भारत एवं राजस्थान सरकार द्वारा विज्ञापनों के लिए मान्यता प्राप्त

आरएनआई पंजीयन RAJHIN/2016/72902

डाक पंजीयन RJ/ UD/ 29-150/ 2023-2025

शब्द रंजन

संस्थापक एवं संरक्षक डॉ. महेन्द्र भानावत

विचार एवं जनसंवाद का पाक्षिक

वर्ष 09 | अंक 14 | उदयपुर गुरूवार 01 अगस्त 2024 | पेज 8 | मूल्य 5 रू.

स्तोत्रों में एक कालजयी स्तोत्र भक्तामर स्तोत्र

- डॉ. महेन्द्र भानावत -

कई विद्वानों ने इस पर टीकाएं लिखी हैं तथा चमत्कार युक्त कथाओं की रचना की हैं। किसी विद्वान ने तो इसके एक-एक श्लोक पर मंत्र तथा तंत्र का सृजन किया है। इसके मंत्रों तथा तंत्रों को अपना कर कई लोगों ने आपदाओं से मुक्ति प्राप्त की है। यह स्तोत्र ही नहीं, मंत्रों का पुंज है। भारत भर में फैले और बिखरे इसके अनुवाद को एकत्र करने का काम साहित्यसेवी एवं सम्पादक श्री विपिन जारोली, कानोड़ (उदयपुर-राजस्थान) और साहित्य मनीषी पं. कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद', खुरई (सागर-मध्यप्रदेश) ने बड़े ही मनोयोग एवं परिश्रमपूर्वक किया है। इन्होंने अब तक प्रकाशित और अप्रकाशित एक सौ इक्कीस अनुवाद एकत्र कर एक कीर्तिमान स्थापित किया है। इस स्तोत्र से कई प्रकार की व्याधियों से मुक्ति मिली है। मुख्यतः जलादर तथा कैंसर जैसी भयंकर बीमारियों का भी इस स्तोत्र से शमन हुआ है।

स्तोत्रों का प्रभाव बड़ा असरकारी होता है। यदि ऐसा न हो तो कोई क्यों उनका सुमरण करेगा? ऐसा ही एक स्तोत्र है, स्तोत्रों में स्तोत्र, कालजयी स्तोत्र भक्तामर स्तोत्र जिसके एक-एक श्लोक

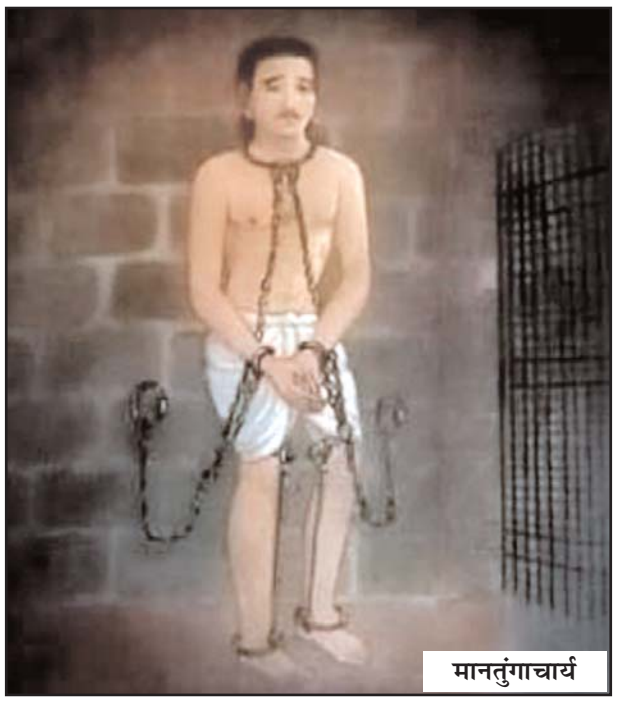

मानतुंगाचार्य

से एक-एक करके 48 ताले टूटे और एक अद्‌भुत करिश्मा ही हो गया।

इतिहास प्रसिद्ध नरेश मालव प्रदेश की धारा नगरी के राजा भोजदेव ने सुप्रसिद्ध जैनाचार्य मानतुंग सूरि के चमत्कारों के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। आचार्य मानतुंग के चमत्कारों के कई किस्से तब आम लोगों की जबान पर चढ़ गये थे। एक किस्सा यह भी था कि उन्हें यदि कोई तालों में बन्द कर भी दे तो वे मुक्त हो जायेंगे। राजा को तो कोई बात हाथ लगनी चाहिये। उसने चमत्कार देखने की जिज्ञासा प्रकट की। तब मानतुंगाचार्य को सांकलों से जकड़ कर 48 तालों वाले तालाघर में बन्द कर दिया। मानतुंगाचार्य इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए।

उन्होंने अपने आराध्य प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का स्मरण किया और उनकी स्तुति में श्लोकों की रचना करते गये। इस तरह एक-एक श्लोक से एक-एक ताला टूटता गया और कुल 48 श्लोकों से 48 ही ताले टूट गये। मानतुंग बन्धन मुक्त होकर राजदरबार में पहुंचे तब राजा और दरबारी उन्हें देखकर चकित रह गये। तभी से इस स्तोत्र की महिमा चल पड़ी।

यह स्तोत्र अपने पद के आधार पर भक्तामर स्तोत्र के नाम से जाना जाता है। संस्कृत भाषा में विरचित यह स्तोत्र वसन्तलिका छन्द में है और भक्ति साहित्य-रस की श्रेष्ठ रचनाओं में गिना जाता है।

भक्तामर- प्रणत- मौलि-मणिप्रभाणा-
मुद्‌द्योतकं दलित-पाप-तमोवितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्॥ 1॥

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय तत्त्वबोधा-
दुद्‌भुत-बुद्धि-पटुभिः सुरलोक-नाथैः।
स्तोत्रैर् जगत्त्रितय-चित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥ 2॥

महिमावन्त-महाप्रभावक और चमत्कारी होने के कारण इस स्तोत्र के अपने ही प्रकार के कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं। कई विद्वानों ने इस पर टीकाएं लिखी हैं तथा चमत्कार युक्त कथाओं की रचना की हैं। किसी विद्वान ने तो इसके एक-एक श्लोक पर मंत्र तथा तंत्र का सृजन किया है। इसके मंत्रों तथा तंत्रों को अपना कर कई लोगों ने आपदाओं से मुक्ति प्राप्त की है। यह स्तोत्र ही नहीं, मंत्रों का पुंज है।

भक्तामर स्तोत्र के कई संस्करणों में पं. कुन्द कुन्द विजयगणि द्वारा संयोजित गुजराती वर्द्धमान स्थानकवासी जैन संघ, बैंगलोर द्वारा प्रकाशित, श्री श्रीचन्द सुराणा 'सरस', आगरा द्वारा सचित्र संयोजित-सम्पादित, पं. कमलकुमार शास्त्री 'कुमुद', खुरई (मध्यप्रदेश) द्वारा अभियोजित सचित्र संस्करण विशिष्ट एवं अनूठे हैं। विशिष्टता की दृष्टि से डॉ. नेमीचन्द जैन, इन्दौर द्वारा सम्पादित-प्रकाशित 'तीर्थंकर' मासिक जनवरी 1982 का 'भक्तामर स्तोत्र विशेषांक' पठनीय एवं संग्रहणीय है।

भाव-गांभीर्य और भाषा सौष्ठव की दृष्टि से संस्कृत साहित्य के इस स्तोत्र से प्रभावित एवं चमत्कृत होकर विभिन्न भाषा-भाषी विद्वानों-रचनाकारों ने अपने-अपने ढंग से इसके कई छन्दों-राग-रागिनियों में शताधिक अनुवाद किये हैं। भारत भर में फैले और बिखरे इसके अनुवाद को एकत्र करने का काम साहित्यसेवी एवं सम्पादक श्री विपिन जारोली, कानोड़ (उदयपुर-राजस्थान) और साहित्य मनीषी पं. कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद', खुरई (सागर-मध्यप्रदेश) ने बड़े ही मनोयोग एवं परिश्रमपूर्वक किया है। इन्होंने अब तक प्रकाशित और अप्रकाशित एक सौ इक्कीस अनुवाद एकत्र कर एक कीर्तिमान स्थापित किया है। देश-विदेश

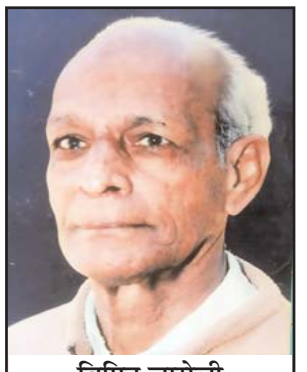

विपिन जारोली

की विभिन्न 16 भाषाओं में अनुदित इस स्तोत के 121 अनुवादों का संकलन लगभग 1100 पृष्ठों का सागर (मध्यप्रदेश) के श्री खेमचन्द जैन चैरिटेबल ट्रस्ट से 'भक्तामर भारती' नाम से प्रकाशित हुआ है जिसका विमोचन केन्द्रीय जल संसाधन मंत्री श्री विधाचरण शुक्ल ने किया था।

जहां तक अनुवादों का प्रश्न है उनमें श्री हेमराज पाण्डेय का विभिन्न छन्दों का पं. गिरधर शर्मा 'नवरत्न' का समश्लोकी, पं. कमलकुमार 'कुमुद' और जीतमल चौपड़ा (अजमेर) के हरिगतिका छन्द में किये गये अनुवाद काफी लोकप्रिय हुए हैं। इसी तरह श्री विपिन जारोली द्वारा मेवाड़ (उदयपुर सम्भाग) अंचल में बोली जाने वाली लोकभाषा मेवाड़ी में किया गया अनुवाद आंचलिक होते हुए भी सार्वदेशिक किस्म का अपने ही प्रकार का निराला और अनूठा है।

जिण चरणां सूं अमर भगत री,
मुंगटा री मणियां परकासै
उणीं नाथ रा उण चरणां ने-
नमू, जगतरा पाप विनास॥ 1॥

तत्वज्ञान रा धारक सुखर,
करें इस्तुति त्रिजग हारी
उणीं आद जिनवर म्हूं भी-
करूं इस्तुति अचरज भारी॥ 2॥

विपिनजी का ही किया गया हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है-

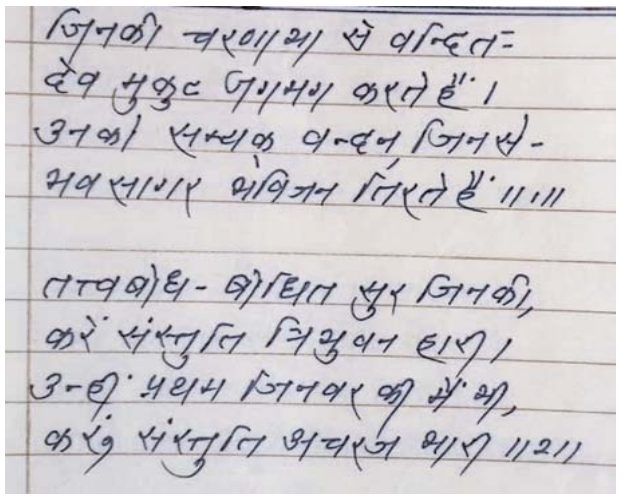

जिनकी चरणाश्रय से वन्दित
देव मुकुट जगमग करते हैं।
उनको सम्यक् वन्दन जिनसे-
भवसागर अविलम्ब तिरते हैं॥1॥

तत्वबोध-बोधित सुर जिनकी,
करें संस्तुति त्रिभुवन हारी।
उन-ही प्रथम जिनवर की मैं भी,
करूं संस्तुति अचरज भारी॥2॥

(दोनों ही अनुवाद स्मृति शेष विपिनजी के सुपुत्र भरत जारोली से प्राप्त)

कोमल कान्त पदावली के मन भावन प्रयोग से स्तोत्र में आदि से अन्त तक गेयत्व है। सरल, सरस, सुबोध, सटीक और स्वल्पाक्षरी यह अनुवाद भाव सौन्दर्य की दृष्टि से गागर में सागर सदृश्य है।

भक्त-पाठक का मन इस अनुवाद से भव सागर में अवगाहन कर आध्यात्मिक रसानुभूति करने लगता है। हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर से प्रकाशित इस सचित्र अनुवाद के अब तक हजारों की प्रतियों तथा संस्करणों में प्रकाशित हो चुके हैं। यह अनुवाद कई पत्र-पत्रिकाओं में धाराप्रवाह रूप में तथा कई स्वाध्यायी पुस्तकों में भी प्रकाशित हो चुका है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भक्तामर स्तोत्र का पाठ समग्र जैन जगत में तो प्रचलित है ही, पर जैनेतर लोगों में भी इसका प्रचलन और प्रभाव देखा गया है। यही कारण है कि कई जैनेतर विद्वानों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है तथा अनुवाद एवं टीकायें की हैं। इस स्तोत्र से कई प्रकार की व्याधियों से मुक्ति मिली है। मुख्यतः जलादर तथा कैंसर जैसी भयंकर बीमारियों का भी इस स्तोत्र से शमन हुआ है।

भक्तामर स्तोत्र के मूल तथा कतिपय अनुवादों को विभिन्न राग-रागिनियों में स्वरबद्ध गाया गया है तथा कई कैसेट्स भी तैयार किये हैं। बड़ी ही श्रद्धा से इन कैसेट्स को लोग प्रातःकाल अपने घरों, प्रतिष्ठानों तथा मन्दिरों में लगा कर सुनते हैं। सुना है किसी कलाकार ने इस स्तोत्र की विडियो कैसेट भी तैयार की है।

भक्तामर स्तोत्र जैसी रचनाएं निश्चय ही कालजयी होती हैं। स्तोत्र की विशिष्टता इसी बात से आंकी जा सकती है कि इसकी महिमा एक हजार से भी अधिक वर्षों से अबाध गति से बढ़ती जा रही है। जन-जन में कण्ठ-दर-कण्ठ इसका प्रचार-प्रसार बढ़ता ही जा रहा है। इस स्तोत्र को कोई वर्ग, वर्ण, धर्म, सम्प्रदाय अपनी चारदीवारी में बांध नहीं सकता। स्तोत्र अजर-अमर है और सबके लिए इसकी फलश्रुतियां जुदा-जुदा हैं।

लोककलाओं की विकसित होती नई प्रस्तुतियां

-देवीलाल सामर-

बाड़मेर, जैसलमेर के लंगे एवं मांगणियार गायकों को सुनकर तो हमारा दिमाग काम नहीं करता। इस गायकी में शास्त्रीय गायकी के अधिकांश तत्व विद्यमान होते हुए भी गायकों को पता नहीं कि वे क्या गा रहे हैं। उन्हीं के द्वारा खड़ताल नामक एक वाद्य सुनकर हमारा दिमाग चक्कर लगाने लगता है, क्योंकि उसमें प्रत्येक मान से शुरू हुए परन टुकड़े आदि शास्त्रीय तोड़ों से टक्कर लेते हुए चलते हैं जबकि वादकों को ताल की खाली भरी एवं मात्राओं का रत्ती भर ज्ञान भी नहीं है। लोकशैलियां जब अत्यधिक लोकप्रिय हो जाती हैं और वे अभिजात्य वर्ग गायन को अपनी ओर खींचने लगती हैं तो वे शास्त्रीय कलाओं का पथ अनुसरण करने लगती हैं। अत: वर्तमान परिस्थितियों में यह आवश्यक सा हो गया है कि पारम्परिक लोककलाओं को यदि सजा संवारकर चुस्त ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जायगा तो वे अपने स्वान्त:सुखाय स्वरूप से ही चिपकी रह जायंगी और उनका प्रदर्शनकारी एवं मनोरंजनकारी रूप बिल्कुल ही नष्ट हो जायगा।

लोकनृत्य और लोकसंगीत की सारे देश में बहार आई है। एक समय वह था जब उन्हें कोई फूटी आंख भी नहीं देखता था। सम्पन्न घरों में, राजा महाराजाओं के प्रासादों में तथा देवी-देवताओं के प्रांगणों में ऐसे नृत्य और संगीत की पूछ थी जो ग्राम जनता की पहुँच से बाहर थे। उन दिनों कुछ ऐसा भी आभास होता था कि लोकसंगीत और लोकनृत्य जैसे कोई त्याज्य विधा है जो इन सम्पन्न घरों एवं सम्भ्रांत व्यक्तियों के पास फटकने, सुनने-सुनाने, एवं गाने-बजाने की वस्तु नहीं है।

यह विधा इसलिए गाँवों के चौराहों, खेत-खलिहानों, पर्व-उत्सव-त्यौहारों एवं लोक-देवी-देवताओं के देवल तक ही सीमित रह गई। यह स्थिति काफी लम्बे समय तक रही और इस तरह विषम बन गई कि कुछ संभ्रांत घरों, भव्य मन्दिरों, मठों एवं राज्य प्रासादों में प्रवेश देने के लिए इस विधा को कुछ लोगों ने ऐसा स्वरूप प्रदान किया जिससे वह अपनी लोकप्रकृति को कायम रखते हुए भी शास्त्रीय शैली की तरह एक विशिष्ट शैली के रूप में प्रकट हुई।

लोकगायकों एवं नर्तकों की विशिष्ट जातियां बनीं और उन्होंने अपनी कला को सामुदायिक दायरे से निकाल कर अपनी निजी धरोहर बनाया। राजस्थान में, विशेष करके राजा महाराजाओं, राजा-रजवाड़ों, ठाकुर-ठिकानों के कारण इन जातियों ने विशेष आश्रय पाया और याचक एवं यजमानों की दो विशिष्ट श्रेणियां बन गईं। इस परिपाटी ने, जहाँ सामुदायिक लोककलाओं को ठेस पहुँचाई, वहाँ गीतों में माण्ड, कजरी, चेती, होरी, लावणी, लूर विदेसी जैसी लोकगायकी ने जन्म पाया और लोकनृत्यों में गरबा, डांडिया, तेराताल, भवाई, छाऊ, मणिपुरी रास एवं यक्षगान जैसे नृत्यों ने विशिष्टता प्राप्त की।

आज देश में लोककला के ये दो वर्ग बन गये हैं। विशेष करके वहां, जहाँ सदियों से शासक और शासित के बीच रिश्ता बना रहा। इस सामुदायिक लोकस्वरूप का जब विश्वजन अध्ययन करते हैं तो बड़े असमंजस में पड़ जाते हैं। 1952 में जब भारतीय लोककला मण्डल की स्थापना हुई तब भी हमारे सामने यही समस्या थी। लोक एवं व्यावसायिक गायक, नर्तकों के दो अलग-अलग रूप देखकर हम दंग थे। बीकानेर एवं जोधपुर की कुछ विशिष्ट मिरासी एवं गंधर्व जातियों के मुंह से जब हम एक ही माण्ड को घण्टों विस्तार से सुनते तो हम दंग रह जाते । ठुमरी गायकी के अनुरूप ही यह गायकी लोकगायकी कैसे बनी यही प्रश्न हमारे सामने मुंह बांये खड़ा रहता था।

उसी तरह बनारस की चेती, कजरी सुनकर भी हमें दंग रहना पड़ता था। बाड़मेर, जैसलमेर के लंगे एवं मांगणियार गायकों को सुनकर तो हमारा दिमाग काम नहीं करता। इस गायकी में शास्त्रीय गायकी के अधिकांश तत्व विद्यमान होते हुए भी गायकों को पता नहीं कि वे क्या गा रहे हैं। उन्हीं के द्वारा खड़ताल नामक एक वाद्य सुनकर हमारा दिमाग चक्कर लगाने लगता है, क्योंकि उसमें प्रत्येक मान से शुरू हुए परन टुकड़े आदि शास्त्रीय तोड़ों से टक्कर लेते हुए चलते हैं जबकि वादकों को ताल की खाली भरी एवं मात्राओं का रत्ती भर ज्ञान भी नहीं है। राजस्थान के बने, एलची, रतनराणा, ओलूं, जला, नींबूड़ी, पोमचो, लूर आदि गीत सुनकर हमें यह भान होने लगता है कि यह विधा जन प्रयोगों से कोसों दूर है।

कई बरसों तक हमारा मन चक्कर खाता रहा और इस विधा को लोक और शास्त्रीय के बीच की कोई कड़ी समझकर हम अपना मन समझाते रहे। उसके बाद 1952 से लेकर 1956 तक मुझे केन्द्रीय सरकार द्वारा लोकनृत्य एवं लोकगीतों की छात्रवृत्तियों के चुनाव सम्बन्धी पेनल पर काम करना पड़ा। वहाँ पर भी आवेदन पत्रों की छानबीन करते समय यही प्रश्न सामने आया कि छाऊ, कुचपुड़ी, यक्षनाट्य, यक्षगान आदि को लोकनृत्यों की शैलियां मानें या शास्त्रीय की। कुछ वर्षों तक तो उन्हें लोक की ही शैलियां मानकर छात्रवृत्तियों प्रदान की जाती रहीं परन्तु बाद में विशेषज्ञों द्वारा इन शैलियों को शास्त्रीय में शुमार कर लिया गया।

इन सब प्रक्रियाओं से हमें यह सोचने को बाध्य होना पड़ता है कि लोकशैलियां जब अत्यधिक लोकप्रिय हो जाती हैं और वे अभिजात्य वर्ग गायन को अपनी ओर खींचने लगती हैं तो वे शास्त्रीय कलाओं का पथ अनुसरण करने लगती हैं परन्तु हमारी यह धारणा भी तब धूलि धूसरित हो गई जब इन शास्त्रीय लगने वाली विधाओं का गहन अध्ययन शुरू हुआ। सर्वप्रथम हमने राजस्थानी की माण्डों का अध्ययन शुरू किया और उसके मूल तक जब हम पहुंचने लगे तो पता लगा कि उनकी पैदाईश वहीं कहीं है जहां हजारों लोग एक साथ मिलकर गाते हैं। इन माण्डों के मूल रूप जब हमें मिले तब हमें निर्णय करना पड़ा कि माण्ड की रचना लोकपरक है; केवल कुछ विशिष्ट जनों ने उसे सजा संवार कर ठुमरी का सा रूप दिया है।

जब हमने बिहार के मुखौटा एवं बिना मुखौटा वाले छाऊ नृत्यकारों को निकट से देखा तो पहले तो यह लगा कि उनकी ढोल खोल पर चलने वाली पदचापें शास्त्रीय सी हैं परन्तु उनके बहुत निकट जाने पर पता लग गया कि वे सब लोक की ही चालें हैं जो किन्हीं विशिष्ट रसिकजनों द्वारा क्लिष्ठ एवं तालाधारित बना दी गई हैं। वे निश्चत रूप से शास्त्रीय नियमों से शासित नहीं हैं। मणिपुर नृत्य में भी कुछ प्रकार ऐसे हैं जो शास्त्रीय में शुमार हैं और कुछ लोक में। मणिपुर का लाहरोबा नृत्य लोक प्रकार ही में समाविष्ट है जबकि देखने में वह शास्त्रीय का ही आभास देता है।

हमें अपने देश की लोककलाओं का अध्ययन करते समय पल-पल पर इस उलझन का सामना करना पड़ता है। राजस्थान के चिड़ावी ख्यालों का जब हम अध्ययन करने लगे और कलाकारों की आलापदारी और पाँवों की चलत फिरत देखी तो दंग रह गये। उनके साथ चलने वाले नक्काड़ों की विविध चालों ने भी हमें उलझन में डाल दिया। इसकी पेचीदा एवं क्लिष्ठ अदायगी को देखकर यह लगा कि यह विधा भी लोकपरक नहीं हो सकती। महाराष्ट्र के तमाशों की लावणी तथा उत्तरप्रदेश के विविध संगीत देख सुनकर हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। गहन चिन्तन के उपरांत हम इस नतीजे पर पहुंचे बिना नहीं रहते कि ये उन लोकविधाओं के व्यावसायिक रूप हैं जो अपने सामुदायिक रूप से तनिक हटकर तथा विशिष्टजनों की प्रतिभा का स्पर्श पाकर अत्यधिक कलापरक बन गये हैं।

लोककलाओं के इस स्वरूप को देखकर हमें इस नतीजे पर पहुंचना पड़ता है कि प्रदर्शनकारी लोककलाओं के दो रूप निश्चित ही समानान्तर चलते हैं जो एक-दूसरे के विकसित-अविकसित रूप नहीं होकर एक दूसरे के पूरक हैं। राजस्थान के अनेक व्यावसायिक गीतों का विश्लेषण करते समय हमें ज्ञात हुआ है कि उनके मूलरूप सामुदायिक गायकी में मौजूद हैं। ये गीत जब सामान्य जन द्वारा गाये जाते हैं तो उनकी बंदिशों के सरल एवं प्राथमिक रूप उनमें विद्यमान रहते हैं और जब वे विशिष्ट व्यावसायिकजनों के कण्ठों पर उतर जाते हैं तो उनमें मुरकियों, आलापों एवं आड़-तोड़ के अनेक चमत्कार जुड़ जाते हैं।

आज के लोकनृत्य एवं लोकगीत सामुदायिक क्षेत्र से निकलकर जब विशिष्ट व्यावसायिक कलाकारों के पास पहुंच जाते हैं तो उनकी भी इसी तरह का काया पलट होना स्वाभाविक है। आज के पारम्परिक समीक्षक इस रूपांतर को घातक मानकर उनकी आलोचना करने लगते हैं परन्तु इस आलोचना के बावजूद भी आज हमारे देश की हर लोकपरम्परा में यह परिवर्तन बड़ी तेजी से आ रहा है और उसे कोई भी ताकत रोक नहीं सक रही है। कुछ विद्वान तो इस परिवर्तन को वांछनीय मानते हैं।

हमारे देश में राष्ट्रीय स्तर पर जब एक नृत्य एसेम्बल बनाने की बात चली तो उसके कुछ उत्तरदायी महानुभावों ने ऐसे ही लोकनृत्यों को प्रश्रय देने की बात सोची थी जो मूलत: इस प्रकार के परिवर्तन के अछूते रह गये हों। राजस्थान के घूमर नृत्य एवं कच्छीघोड़ी नृत्य के चुनाव की बात आई तो चुनावकर्त्ताओं को यह बात अच्छी नहीं लगी कि घूमर नृत्य जैसे जीवन्त एवं प्रतिपल समाज की रसधारा में अपने को जोड़े रखने वाले नृत्य में रेशमी एवं गोटा किनारी वाली पोशाक पहनी जाय। पारम्परिक कच्छीघोड़ी की शक्लसूरत के बेढ़ंगेपन में जो तनिक उभार आया, वह भी उन्हें पसंद नहीं हुआ। वे चाहते यह थे कि घूमर नृत्य में गाढ़े मोटे कपड़े की पोशाकें ही पहनी जायें और कच्छीघोड़ियों का नाक-नक्श का बेढंगापन भी पूर्ववत ही रखा जाय। इसी आग्रह के कारण ये दोनों नृत्य राष्ट्रीय एसेम्बल के लिए नहीं चुने जा सके। उसके बाद तो पता नहीं किन कारणों से यह एसेम्बल का विचार भी भारत सरकार का त्याग देना पड़ा।

इस विचार के बावजूद भी आज देश के हर क्षेत्र में स्कूल, कॉलेजों के सार्वजनिक समारोहों में लोकनृत्यों का यही रूपान्तरित रूप धड़ाके से सामने आ रहा है। हम हजार भी कोशिश करें कि इन कलाओं के मौलिक रूप ही प्रस्तुत किये जांय, परन्तु इस विधा की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर अब उसे केवल पारम्परिक लोककलाकारों के पास ही बांधे रखना सम्भव नहीं है। यह शुभ लक्षण है कि यह विधा लोककलाकारों के दायरे से बाहर निकलकर सामान्यजन के पास आ रही है। दर्शक समुदाय की रुचि भी परिष्कृत हो रही है।

मनोरंजन की अनेक चुनौतियां उनके सामने खड़ी हैं। यदि हमारा यही दुराग्रह बना रहेगा तो निश्चय ही लोककला का भविष्य अंधकार में पड़ जायगा। मिसाल के तौर पर राजस्थान के तेराताल नृत्य को ही लीजिए। तीन घूंघटधारी कामड़ जाति की तेराताल वादिकाएँ अपने अग प्रत्यंग पर मजीरे बांधकर अपने पीछे बैठे हुए पारम्परिक तंदुरा वादकों के संग अपनी कला प्रदर्शित करती हैं। प्रदर्शन तो उनका चमत्कारिक होता ही है परन्तु प्रस्तुतीकरण नीरस होता है। यही तेराताल जब आज की स्कूली कलानेत्रियाँ साफ-सुथरे एवं कलात्मक वेश विन्यास पहिनकर खुले मुंह करती हैं तो दर्शक समुदाय मंत्रमुग्ध हो जाता है।

अत: वर्तमान परिस्थितियों में यह आवश्यक सा हो गया है कि पारम्परिक लोककलाओं को यदि सजा संवारकर चुस्त ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जायगा तो वे अपने स्वान्त:सुखाय स्वरूप से ही चिपकी रह जायंगी और उनका प्रदर्शनकारी एवं मनोरंजनकारी रूप बिल्कुल ही नष्ट हो जायगा। जब उसका चलन व्यक्ति विशेष के अन्दर ही सीमित रह जायेगा तो उसका विकास भी निश्चित ही अवरुद्ध हो जायेगा।

अत: यह परम आवश्यक है कि इन सामुदायिक कलाओं के व्यावसायीकरण की प्रक्रिया को, जो कि नितान्त स्वाभाविक प्रक्रिया है, कभी भी रोका नहीं जाय। उनका रंगमंचीय प्रदर्शनकारी रूप ही उनका व्यावसायिक रूप है। यही व्यावसायिक रूप इन कलाओं को जीवित रहने, विकसित होने एवं कला के उच्चस्तर तक पहुंचने में मदद करता है। अत: जहां लोककलाओं के सामुदायिक रूप को सुरक्षित रखना आवश्यक है, वहां उनके मनोरंजनकारी एवं प्रदर्शनकारी रूप को भी विकसित होने के लिए पूरा मौका देना जरूरी है।

लोककला की प्रकृति भी यही है कि वह परिवर्तनशील रहे और जीवन के साथ जुड़ी रहकर भी नवीन रसधाराएं प्राप्त करती रहें। जिस क्षण वे अपना यह स्वभाव छोड़ देंगी, उसी दिन से वे लोककला का अपना दर्जा भी खो बैठेंगी। अत: देश में लोककलाओं का जो मनोरंजनकारी एवं प्रदर्शनकारी रूप विकसित हो रहा है, उसे पूर्णरूप से विकसित होने दिया जाय।

स्मृतियों के शिखर (188) : डॉ. महेन्द्र भानावत

मुख को ओट देते मुखौटे

मुखौटा शब्द मुख पर ओटा अर्थात् आवरण से बना है। इसका भारतीय रंगमंच पर ही नहीं, विश्व के विविध रंगमंचों पर प्रयोग हुआ मिलता है। रंगमंच के अलावा भी मुखौटा लगाने की परंपरा बड़े व्यापक रूप में देखने को मिलती है। बरसात के दिनों में जब तालाब पानी से लबालब भर जाता है और पानी उसके मुहाने से ऊपर होकर निकलता है तब उसे 'ओटा आना' कहते हैं। इसे कहीं-कहीं ओटा लगना तथा ओटा चलना भी कहा जाता है। आवरण का अर्थ खोल से है। जैसे तकिये अथवा गादी-मोड़े को ढकने के लिए खोल पहनादी जाती है, उसी प्रकार मुखौटा मुख का खोल है। ग्रामीणजनों में यह मुखौटा खोल्ये के नाम से भी जाना जाता है।

असल में मुखौटा व्यक्ति की सूरत को ढकने अथवा छिपाने का ही उपक्रम है। कुरुप सूरत वाले की खोट को छिपाने में भी मुखौटे की अहम भूमिका रही है। प्रस्तुति के अनुरूप कईबार अच्छे चेहरों पर लगा मुखौटा व्यक्ति को बदसूरत भी कर देता है। कभी-कभी रंगों का मोटा आवरण भी मुखौटे-सी छवि देता पाया जाता है। वह मुखौटा ही है जो व्यक्ति के अच्छा-बुरा श्रेष्ठ और अधम, निकृष्ट बना देता है।

आदिवासी भीली नृत्य 'गवरी' में नायक 'राईबुड़िया' अपने मुंह पर जो मुखौटा धारण करता है वह 'मूरत' नाम से पहचान लिए है। मुखौटा का एक अर्थ चेहरे से भी है। असली चेहरे को छिपाने के लिए उस पर एक नया दूसरा चेहरा लगाया जाता है। सनकादिकों के खेल में सनक सनन्दन आदि मुख्य पात्र जो मुखौटा लगाकर आते हैं वे चेहरे के नाम से ही जाने जाते हैं। आदिवासियों में इसका एक नाम मुखटा भी सुनने को मिलता है।

राजस्थान में मुखौटों का प्रयोग कई जगह होता है। आदिवासी भीलों के गवरी नामक नृत्यानुष्ठान में तो उसका नायक बुड़िया की पहचान ही उसके भीमकाय मुखौटे से है। यह बुड़िया अपने पूरे परिवेश में शिव तथा भस्मासुर का प्रतिरूप है किंतु मुखौटे की दृष्टि से यह राक्षस भस्मासुर की ही छवि लिए है।

बुड़िया का यह मुखौटा प्राय: गोलाई लिए होता है। मोटी लकड़ी को गोलाकार देते हुए उस पर नाक का उभार दिया जाता है और आंखों की जगह दो खड्डे बनाये जाते हैं। इस मुखौटे को पूरे सिन्दूर से रंग दिया जाकर ऊपर सफेद-लाल मालीपना से अच्छी सजावट दी जाती है। गालों की जगह दोनों ओर चिरमू का उभार दिया जाता है।

मोर के पंखों की छोटी-छोटी डंडियों से दांत बनाये जाते हैं। दांतों की जगह खड़े रूप में मोर पंख की पाव-पाव इंची डंडी लगा दी जाती है। मूछों की जगह बकरी के बाल लगाये जाते हैं। इसी प्रकार का एक और मुखौटा गवरी में खेतुड़ी पहनती है जो काला होता है। यह मुखौटा गोल नहीं होकर नीचे से एक तरफ तनिक मुड़ाव लिए होता है। वजन में यह बुड़िये के चेहरे से हल्का होता है।

बिसाऊ की रामलीला में तो रामादि चारों भाई तथा सीता को छोड़ सभी पात्र अपने चेहरे को मुखौटे से ढके मिलते हैं। अन्य रामलीलाओं में रावण तथा मृग मुखौटे लगाते हैं। रावण का मुखौटा दस शीश लिए होता है। गींदड़ तथा गेर जैसे अन्य कई लोकनुरंजन हैं जिनमें कलाकार मुखौटा लगाए शोभित होते हैं। रम्मती ख्यालों में बीकानेर में मैंने देखा, ख्याल के प्रारंभ में गणेश की स्तुति में अभिनेता जब गणेश बनकर आता है तब उसके मुंह पर गणेश का बड़ा ही कलात्मक काष्ठ निर्मित मुखौटा लगा होता है।

लेकिन बिना मुखौटा लगाये मुख को सज्जा देने में भी लोकरंगमंच पीछे नहीं है। यों हर व्यक्ति अपने को अच्छा और सुंदर दिखाने के लिए नाना उपक्रम करता है। फिर अनुरंजन के लिए तो वह अपनी सज्जा में कोई कसर बाकी नहीं रखता है।

मुख ही क्यों, कई रूप ऐसे हैं जिनमें पूरा शरीर ही विशेष रूप से सजाया जाता है। बहुरूपिया जब बन्दर का स्वांग धरता है तब उसका पूरा शरीर ही रुई के फोहों से जड़ाव लिए होता है। उसके यकायक दिखाई देने पर असल बंदर होने का भ्रम ही हो जाता है। शिव बनने पर सारे शरीर पर भस्मी लगादी जाती है। गवरी के नार स्वांग में शेर बना व्यक्ति अपने पूरे शरीर पर नार सी टिपकियां लगाये बड़ा कलात्मक रूप लिए होता है। देवी का वाहन होने के कारण यह दर्शकों के बीच एक चादर में छिपाकर लाया जाता है। जब अचानक चादर हटाने पर जोर की

मुखौटा धारक गवरी नायक

हूंकार लेकर वह प्रकट होता है तो बच्चों में एक प्रकार का विस्मयमूलक भय पैदा होजाता है। इसी प्रकार मांडल के शेरों के स्वांग में चारों स्वांगीड़े शेर बने होते हैं। इन शेरों की यह विशेषता होती है कि इनके सिर पर सींग होते हैं जबकि असली शेर बिना सींग का होता है।

लगभग हर तरह के मुखौटे में शिरोवस्त्र उसका अनिवार्य अंग होता है और शिरोवस्त्रों में सामग्री और डिजाइन की दृष्टि से विस्मयकारी विविधता पायी जाती है। मुखौटे बनाने के लिए कारीगर तरह-तरह की चीजों का इस्तेमाल करते हैं, जैसे मिट्टी, लकड़ी, छाल, कार्क, गूदा, खाल, कपड़ा, बांस, कागज की

विभिन्न प्रकार के मुखौटे

लुगदी, धातु आदि। देवों, मनुष्यों, पशुओं और दानवों के मुखौटों को अनेक प्रकार से बनाया जाता है। मुखौटों में रंग योजना और डिजाइन भी तरह-तरह के पाये जाते हैं। रूप-सज्जा की भांति ही मुखौटों में भी रंगों को प्रतीकात्मक ढंग से काम में लाया जाता है।

हिमालय के क्षेत्र में लद्दाख से लगाकर अरूणाचल प्रदेश तक के बौद्ध मठों में लामा लोग अनुष्ठानमूलक मुखौटे लगाकर नृत्य करते हैं। रामनगर की रामलीला में रावण के सोने और जरी के काम वाले और दुर्गा तथा हनुमान के पीतल के मुखौटे कला की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट होते हैं।

ऐसा नहीं है कि एक मुखौटा एक ही तरह की भावभंगिमा की अभिव्यक्ति लिए होता है अपितु देखा यह गया है कि देखने वाले की कल्पना की उड़ान के अनुरूप एक मुखौटा अनेक प्रकार की अजब-गजब की अभिव्यक्तियां देने में सक्षम होता है।

इसके लिए हंगरी के दक्षिण भाग में श्रावण में आयोजित होने वाले 'बूसो' नामक त्यौहार को देखना होगा। इस त्यौहार के साथ 15वीं-16वीं शताब्दी की एक ऐसी लोकप्रिय कथा जुड़ी हुई है जो इतिहास सम्मत है और उतनी ही लोकधर्मी बनी हुई है। उसके अनुसार तुर्कों ने जब अचानक हंगरी के दक्षिणी भाग पर हमला बोल दिया तो हंगरीवासी तनिक भी भयभीत नहीं हुए। उन्होंने बड़ी चतुराई से लकड़ी के बड़े-बड़े मुखौटे अपने मुंह पर धारण कर आक्रांताओं को बुरी तरह डरा-धमकाकर खदेड़ दिया। तब से प्रत्येक वर्ष यह त्यौहार बड़े उत्साह एवं धूमधाम से मनाया जाता है।

इन भीमकाय भय देने वाले मुखौटों में अलग से कान चिपकाये होते हैं और प्रथम द्रष्ट्या ये अति डरावने भूतहे लगते हैं। इन मुखौटों की खासियत यह है कि 'बूसो' नाम से मुखौटों का त्यौहार ही नहीं, मुखौटे भी बूसो, इन्हें पहनने वाले भी बूसो और नृत्य करने वाले भी बूसो को पुरुष ही धारण करते हैं जो शौर्य और वीरत्व विजेता के प्रतीक होते हैं। ऐसे बूसो फरवाला कोट पहने प्रत्येक गांव तथा शहर की गलियों में दस्तक देते मिलते हैं। समूहबद्ध भ्रमण करते बूसो घरों के बाहर खड़ी-पड़ी लकड़ियों को लेकर भी नृत्यमय अदायगी देते फूले नहीं समाते हैं।

कुछ ऐसी ही लकड़ियां होली पर राजस्थान में बच्चे लुकेछिपे गांवों में घरों से उठा लाकर होलीथेड़ एकत्र करते हैं और फिर उन्हें होली के साथ जलाकर नाचते-कूदते गेर खेलते 'भाई-भाई रे गेर्‌या धन्त्यो पतड़' गीत के साथ फूले नहीं समाते हैं। मैंने भी अपने बचपन में अपने मोहल्ले की होली जलाते कई घरों से मूली की लकड़ियां तथा सूखे-आले कण्डे-छाणे चुरा-चुरा कर होली मंगलाई है और होली की छाल, लकड़ियों पर लपेटकर उन्हें होली की ज्वाला में तपाते, गरमास देते लहरदार छड़ियों से गेर खेलने का मजा लिया है।

मुखौटों के सर्वाधिक अजूबे प्रयोग, टोटके तथा उपयोग जनजातियों में देखने को मिलेंगे। ये प्रयोग अलौकिक, पराशक्ति आह्वान तथा रोग निदान एवं अग-जग की खुशहाली के लिए किये जाते हैं। नुगरी शक्तियों के दमन के लिए और परेशान करने वाली नकारा शक्तियों को जड़मूल से समाप्त करने के लिए भी ये प्रयोग परम्पराशील बने हुए हैं। इनके प्रयोग पर किसी का दबाव, सामाजिक प्रभाव और कुत्सित व्यवहार का नहीं होकर रहस्यमय जगत की बुरी हवा से बचाव का, निडर बने रहने का और बुरी नजर से बचने का भी रहता है इसीलिए घरों के बाहर भीमकाय अति भय देने वाले मुखौटे लगाने की परम्परा मिलती है बल्कि ग्राम पटेल या फिर मोतबीरों के काष्ठ निर्मित दरवाजों पर भी मुखौटों का उभार ही अपनेआप में रोमांच पैदा करने वाला होता है।

अस्क तथा द मास्क जैसी हिन्दी-अंग्रेजी फिल्मों के नायकों के अनुभवों से यह प्रतीत होता है कि मुखौटा लगाने से व्यक्ति अपने में बदलाव महसूस कर अपने को अपने साधारण से भिन्न कुछ जुदा एवं विलग ही महसूस करता है। बचपन में मैंने भी पुट्ठे अर्थात् मोटे कागज पर भांत-भांत के रंग वाले छपित मुखौटे पहन दोस्तों को आपस में डराते-धमकाते बड़ी क्रीड़ाएं की हैं। ऐसे मुखौटों की आंखों की जगह पोली रहती थीं जिनसे मुखौटे पहनने वाला बाहरी जगत को ठीक से देख पाता।

नेपाल की तराई, काठमाण्डू तथा उत्तरी हिमालयी क्षेत्रों की जनजातियों का अध्ययन करने पर उनमें प्रचलित मुखौटों से सम्बन्धित कई ऐसे तथ्य उद्‌घाटित हुए मिलते हैं जो अनेक अजूबे, अलौकिक तथा अतीन्द्रिय जानकारियों से समृद्ध करते पाये जाते हैं। मुखौटों के लिए ठीक ही कहा गया है-

''अनोखी और रहस्यात्मक अभिव्यक्ति की यह प्रणाली हिन्दू और बौद्ध धर्म से पूर्व के धार्मिक कार्यविधि, वास्तविक विश्वासों और दर्शन की एक समझ उत्पन्न करती है। ये जनजातियां नेपाल के तराई क्षेत्र, काठमांडू के विस्तार क्षेत्र और उत्तरी हिमालय क्षेत्र में पाई जाती है लेकिन समय के थपेड़ों के आगे कई लुप्त होती जनजातियों की कुशल मुखौटा पूजा-पद्धति जो अन्य धर्म के प्रभाव से परिवर्तित हो गई या कम हो रही है, प्रभावित हुई है। हिमालय के जनजातीय मुखौटे के आकार और बुनावट की उत्पत्ति अफ्रीकन, इंडोनेशिया और अमेरिका के मुखौटों का प्रतिरूप है।

ईसा पूर्व दो शताब्दी के ये जापानी जोमोन (रस्सी के नमूने) पक्की मिट्‌टी के मुखौटों या साइबेरिया के 'समास' या मध्यभारतीय जनजातियों 'भूमास' के मुखौटों से मिलते हैं जिसका प्रयोग जनजातियां शिकार के उत्सव से पहले भविष्यवाणी के लिए करती थीं। इस प्रकार के मुखौटे बनाने की कला प्रागैतिहासिक काल से जुड़ी हुई है। पशुओं की आकृति के इन मुखौटों का प्रयोग जनजातियां उपचार, श्राप या किसी को मृत्यु देते समय करती हैं। बड़े उत्सवों के समय नृत्य किये जाते थे, जिनमें भव्य मुखौटों का प्रयोग किया जाता है।

सभी धार्मिक समूह चाहे वह हिन्दू, बौद्ध अथवा बोन (नेपाली धर्म) हों, मुखौटों का प्रदर्शन धार्मिक रीतियों अनुष्ठानों या सभी के कर्मकाण्डों में करते हैं जिनको 18वीं शताब्दी तक राजघरानों, कस्बों, गांव और धार्मिक समुदायों द्वारा कायम रखा गया। मुखौटों का नृत्य मात्र उच्च वर्गों तक सीमित नहीं होता। ग्रामीण नाटकों में राक्षसों के चरित्र का विशिष्ट योगदान होता है। उसकी आकृति बहुत ही अजीब व भयावह होती है। उसकी विशेषता लम्बे दांत, दंभ से भरी आंखें और चरित्र का क्रूर एवं कुटिल प्रदर्शन होता है जिसमें उसकी पाशविक प्रवृत्ति की झलक मिलती है।

राक्षसों के मुखौटे अक्सर उन सभी भावों से युक्त होते हैं जो मानवीय मस्तिष्क पर अपने प्रभाव को बना सकें। कुछ मुखौटे जोड़े से बनाये जाते हैं और उनका प्रयोग ग्रामीण मसखरों द्वारा किया जाता है। एक बूढ़े व्यक्ति और उसकी कई पत्नियों का घरेलू झगड़ा, मूकाभिनय के द्वारा हास्य परिदृश्य में दिखाया जाता है।

मध्य तराई क्षेत्र की जनजातियों में पाए जाने वाले मुखौटों का प्रयोग समारोह में न होकर अपने घर, जानवरों के बाड़े, चारा रखने के स्थान को अपशकुन व बुरी नजर से बचाने के लिए किया जाता था। इस प्रकार के मुखौटों को अपने दरवाजों पर टांगने से बिजली की देवी डर कर भाग जाती जो उनके घर को बिजली गिरने या व्रजपात से बचाती है। मध्य तराई क्षेत्रों में आदिवासियों द्वारा पांच दिन तक तिहार उत्सव मनाया जाता है जिसमें यम, शिव, लक्ष्मी की पूजा की जाती है जिसका उद्‌देश्य सम्पन्नता और खुशी को प्राप्त करना रहता है। यहां लकड़ी और लोहे के मुखौटे को पहन कर मसखरा गांव की गलियों में कूदता है, नृत्य करता है, चुटकुले सुनाता है और लोगों को मूर्ख बनाता है।

मगार में पाए जाने वाले मुखौटों में राक्षसों व मसखरों के अतिरिक्त साधु या योगी का भी मुखौटा प्रचलित है जिसका प्रयोग सामान्यत: नाटकों में दर्शकों को आदर्श व चारित्रिक विशेषता समझाने के लिए किया जाता है लेकिन मगार जनजाति के लोग इसका प्रयोग नाटकों में दर्शकों को हंसाने के लिए करते क्योंकि मंच पर इसकी विचित्र वेशभूषा, बड़े लम्बे बाल तथा इसके मांस न खाने और मदिरा नहीं पीने के चारित्रिक अभिनय के कारण अन्य कलाकार इसका मजाक उड़ाते हैं।

इस मुखौटे को प्रमुखतया आदिवासियों के द्वारा धातु, दांतों की अस्थि और अन्य कृत्रिम अलंकरणों द्वारा सजाया जाता है। मुखौटे पर केश सज्जा के लिए ये लकड़ी की पिनों के द्वारा केशों को ऊपर लगाते हैं। थकाली जनजाति अपने कुल के पूर्वज के प्रति समर्पित रहती है। उत्सवों का आयोजन बुरी आत्माओं को दूर रखने के लिए किया जाता है। पूर्वजों के मुखौटे बहुत कुछ मनुष्य के चेहरे से मिलते-जुलते होते हैं। इन्हें लकड़ी से बनाया जाता है जिस पर सफेद मिट्‌टी का लेप किया जाता है। इनका प्रयोग थकाली जनजाति अपने धार्मिक संस्कारों व नृत्यों में करती हैं।

- शेष पृष्ठ सात पर

शब्द रंजन

उदयपुर, गुरूवार 01 अगस्त 2024

सम्पादकीय

भारतीय संस्कृति का सुख

भारतीय संस्कृति के प्रति आज समस्त विश्व की आँखें लगी हैं। उन्हें यह अनुभव हो गया है कि केवल धन जमा कर लेने तथा भौतिक सुखों पर आधारित रहने मात्र से सुख नहीं मिलता। अन्ततोगत्वा उन्हें उस अनुभव की आवश्यकता है जो उन्हें सच्चा सुख दे सके। धन, वैभव की उनके पास कमी नहीं है। साधन-सुविधाएँ, पढ़ाई-लिखाई, रोजगार, मौज-मजे की उनके पास सुविधाएँ बहुत हैं परन्तु फिर भी वे सुख की चैन नहीं सोते। वह भावना उनके पास कहाँ है जो हमें यह बतलाती है कि जितना छोड़ेंगे, जितना वैभव और भौतिक सुख के बोझ से हलका होंगे, उतनी ही चैन की नींद लेंगे और आनंद से मृत्यु का आलिंगन करेंगे।

हमारे देश में अमीरों ने जानबूझकर इसी सुख के लिए गरीबी का आलिंगन किया है। कभी हमारे देश में त्यागी, तपस्वी तथा साधु, संत, विद्वान आदर पाते थे पर आज पैसे वाला, धनिक, सत्ताधारी आदर पाता है। एक वह समय था कि स्वामी हरिदास को अकबर ने अपने दरबार में बुलाया तो संत हरिदास ने कह दिया कि अकबर को मेरे संगीत का आनंद लेना हो तो मेरे पास आवे और सम्राट अकबर को पैदल हरिदास के पास जाना पड़ा। इसी आत्मिक सुख के लिए हमारे बड़े-बड़े सम्राट राज पार्टी छोड़कर जंगलों में चले गये। इसी त्याग, तपस्या एवं अपरिग्रह की भावना से हमें महावीर और बुद्ध जैसे महापुरुष प्राप्त हुए जिन्होंने विश्व में जैन एवं बौद्ध सस्कृति के माध्यम से जीवनोत्कर्ष की बात कही। ऐसे ही महान मुनियों की देन से हमें ऐसे-ऐसे ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं जिन्हें पढ़कर आज समस्त विश्व आश्चर्यचकित है। उन्होंने जन्म-मरण एवं बह्मज्ञान की बातों को खोल कर रख दिया। इस ज्ञान ने जीवन की उन बड़ी-बड़ी समस्याओं एवं प्रश्नों का हल प्रस्तुत किया है जिन्हें सुलझाने के लिए वैज्ञानिक एवं तात्विक लोग आज भी पच रहे हैं।

क्या हम यह नहीं चाहेंगे कि हमारी आज की पीढ़ी को इस धरोहर का आभास नहीं कराया जाय? क्या हमारे आज के शिक्षाक्रम में इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कोई योजना है? हमारे पारंपरिक साहित्य में जो ज्ञान छिपा है वह क्या बच्चों के सामने आता है? हमारे लोकजीवन में वे समस्त परंपराएँ झलक रही हैं जिनमें धर्म, अध्यात्म, जीवनोत्कर्ष की बड़ी-बड़ी बातें छिपी हैं। उन में बड़े-बड़े शास्त्रों का सार छिपा है। क्या हम उनसे बच्चों को अवगत रखते हैं? हमारे लोकदेवता तथा तत्संबंधी चलने वाले गीतों एवं गाथाओं में हमारे जीवन का वह सार छिपा है जो बड़े-बड़े शास्त्रों में उल्लिखित है।

इन्हीं सब जीवनादर्शों को जीवित रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने लोकोत्सवों की योजना पारित की है जिन्हें मनाने के लिये हजारों लाखों लोग दौड़ पड़ते हैं। वे उन्हें मनाने के लिए तर्क-वितर्क में नहीं पड़ते। वे केवल उनके द्वारा अपने जीवन में आनन्द पूरना जानते हैं। इन्हीं अटूट आस्थाओं के कारण वे सुखी भी हैं। अभावग्रस्त जीवन से वे दु:खी नहीं हैं। वे जो रात को कबीर, मीरां, दादू के गीत गाते हैं उनमें जीवन का यही सार छिपा है कि यह संसार कागज की पुड़िया है। सराय है, मुसाफिरखाना है। आज यहां कल वहां चलते ही रहना है, तो फिर संसार का बोझ ढोकर अपने मन को बोझिल क्यों बनाया जाय? क्या हमारे बच्चों में ये संस्कार भरने के लिये हमारे पास कुछ है?

पोथी खाना

दुनिया जैसी मैंने देखी

उदयपुर निवासी डॉक्टर श्याम मनोहर व्यास पूर्व शिक्षा उपनिदेशक एवं वरिष्ठ साहित्यकार द्वारा रचित पुस्तक 'दुनिया जैसी मैंने देखी'(आत्मकथा) साहित्यकार की 108वीं पुस्तक है। पुस्तक 25 चित्रों सहित 300 पृष्ठ की है।

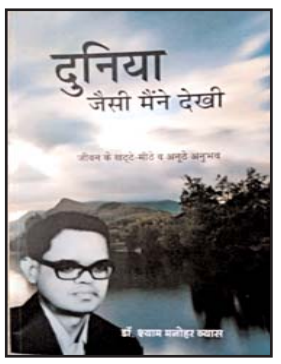

लेखक शिक्षा विभाग में उच्च पद से सेवानिवृत हुए हैं। पुस्तक 6 भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में जन्म से लेकर सेवानिवृत्ति तक का विवरण है, जो पाठक को बांधे रखता है। इसमें उनके संस्मरणों का संकलन है। पारिवारिक व सामाजिक जीवन के अनूठे व रोचक संस्मरण हैं। राजकीय सेवा में आने वाले अनुभव का विस्तृत वर्णन है, लेखक को किस प्रकार कानूनी दाव पेजों से गुजरना पड़ा।

दूसरा भाग उनकी साहित्यिक उपलब्धियां दर्शाता है। इनमें उनकी रचित पुस्तकों व पुरस्कारों तथा सम्मानों का वर्णन है। पुस्तक में कहीं-कहीं लघु कथाओं व कविताओं का भी समावेश है। श्रम का पाठ ऐसी ही एक लघु कथा है जो सच्ची घटना पर आधारित है। नाथ कविता ईश्वर के अस्तित्व का प्रतीक है। तीसरा भाग अध्यात्म चिन्तन एवं चमत्कारिक अनुभूतियों से सम्बन्धित है। लेखक का दावा है, इस प्रभाग में जिन घटनाओं का उल्लेख किया गया है वे सत्य तथ्यों पर आधारित है। धार्मिक यात्राओं का वर्णन करते हुए लेखक ने भारतीय संस्कृति के पक्ष को उजागर किया है।

अनपढ़ का दर्शनशास्त्र में एक अनपढ़ व्यक्ति की तर्कसंगत बातचीत का उल्लेख किया गया है। लेखक ने परामनोवैज्ञानिक पर भी इस पुस्तक में अपने विज्ञान सम्मत विचारों को प्रकट किया है। स्वयं डॉ. व्यास के इस विषय पर कई लेख देश के प्रतिष्ठित समाचारपत्र, पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। भारत की तत्कालीन राजनीति पर भी इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है।

चौथे भाग में भारत विभाजन एक त्रासदी अध्याय है। इसे लिखने की प्रेरणा लेखक को अपने बचपन में घटी एक घटना से ही जिसका उल्लेख लेखक ने अपनी भूमिका में किया है। अंत में लेखक ने देश के भविष्य पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। युवा पीढ़ी को मार्गदर्शन दिया है। कुल मिलाकर डॉ. व्यास की यह पुस्तक पढ़ने योग्य है। भाषा शैली सरल व सुबोध है। मुख्य पृष्ठ भी आकर्षक है। मूल्य कुछ अधिक है पर महंगाई को देखते हुए उचित है।

- डॉ. सीमा उपाध्याय

हारीत और अल्पज्ञात राशि संन्यासी

-डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'-

शैव संन्यासियों में एक मत अपने नाम के आगे राशि लिखता रहा। वैसे ही जैसे नाथ, गिरि, पुरी आदि से नामांत किया जाता। राशि नाम वाले संन्यासियों के अनेक अभिलेख मेवाड़, गुजरात, मालवा आदि में मिले हैं। एकलिंगजी का एक अभिलेख 971 ईस्वी का है। बाद के अनेक अभिलेख हैं जिनमें शिवराशि, एकलिंग जी मंदिर के प्रतिष्ठापक का नाम दो अभिलेखों में आता है और उनके गुणों की प्रशंसा श्रमणों ने भी की।

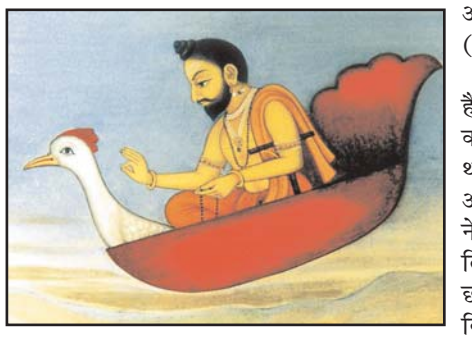

पिछले कुछ वर्षों में अभिलेखों की की गई खोजों में राशि नामांत वाले कई संन्यासियों के नाम, उपाधियां, उनके काम, सामाजिक सेवाएं आदि का विवरण मिला है। इनमें हारीत राशि का नाम मेवाड़ में बहुत प्रसिद्ध रहा है। हारीत एक ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं। वे भार्गव थे, भृगुवंश की विभूति, यह वंश पश्चिमी भारत में पर्याप्त रूप से प्रसारित था और मनु की स्मृति से लेकर महाभारत तक के विस्तार में इन्होंने बहुत योगदान किया।

हारीत की दो स्मृतियां ख्यात हैं-

- वृद्ध हारीत स्मृति और
- लघु हारीत स्मृति।

लघु हारीत स्मृति उपलब्ध होती है जबकि हारीत के अनेक वचन धर्मशास्त्रों की टीकाओं में यत्र-तत्र मिलते हैं। लघु हारीत स्मृति, जिसका रचनाकाल 7-8वीं सदी है, में हारीत के लिए कहा गया है-

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्म प्रवर्तक,
वर्णानामाश्रमाणांच धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव।।

हारीत योगी थे, योगशास्त्र के जानकार, उनके आसपास तत्कालीन ऋषियों का जमावड़ा रहता था। जो कुछ हारीत ने कहा, उनका संकलन उनकी स्मृति के नाम से किया गया। वह योगशास्त्र सबके लिए आवश्यक बताते हैं। यद्यपि स्मृति का संकलन वैष्णवों के हाथों हुआ था किन्तु हारीत राशि थे शैव।

लाकुलीश भगवान के आराधक और आथर्वण मुनि कहे जाते थे। वह सूत्र ग्रन्थों में आए आर्यप्रदेश की जो पहचान बताते हैं, वह आज का राजस्थान ही है, जहां कि काले हरिण स्वाभाविक रूप से विचरण करते थे और वे यहां अधिकाधिक रूप से बसने का परामर्शकर्ता थे। (श्लोक 16)

विप्रों के लिए वे कृषिकर्म करना जरूरी बताते हैं, यह इस प्रांत की विशेषता भी रही है। राशि कहलाने के मूल में हारीत की अपनी योद्धावाहिनी थी। स्मृति से विदित होता है कि वे समाज सुधार में अग्रणी रहे और यज्ञधर्म के उपदेष्टा रहे। उनकी सेना ने पश्चिमी भारत पर होने वाले हमलों को रोकने के लिए नागादित्य को प्रेरित किया था। राजा के लिए छठूंद कर की पैरवी करते हुए उन्होंने नीति, सन्धि, विग्रह, देवादि के प्रति तत्पर रहने के गुण जरूरी बताए हैं। इस प्रदेश में गौरक्षा पर उन्होंने सर्वाधिक जोर दिया, वशिष्ठ के आश्रम में गाय की रक्षा का आख्यान रामायण में आता है ही, मगर हारीत स्मृति में कहा गया है -

गोरक्षां कृषि वाणिज्यं कुर्याद्वैश ?यो यथाविधि,
दानं देयं यथाशक्या ब्राह्मानांच भोजनम्।।

हारीत ने इस प्रदेश में अपनी बुद्धिमानों की सेना को तैयार किया और वह कार्य किया, जिसकी प्रशंसा परोक्षत: कवि माघ के शिशुपाल वध में देखी जा सकती है। उनके नेतृत्व में ही भीनमाल आतंकियों, आततायियों से विरोध के लिए तत्पर हुआ। हारीत के इन गुणों के कारण ही उनको राशि कहा गया। वैसे यह नामांत इस काल में शैव संन्यासियों के लिए होता था। गणेश पुराण में राशि नामांत वाले कई नाम आए हैं। एकलिंगजी में तो यह परम्परा लम्बे समय तक बनी रही। कैलाशपुरी, चीरवा, चित्तौड़गढ़, आबू पर्वत, सोमनाथ, सोभागपुरा, बिजोलिया, मेनाल, अमरखजी, पालड़ी... कहां-कहां राशियों का विचरण नहीं था। कुमारपाल के अभिलेखों में बृहस्पति राशि का नाम मिलता है। सोमनाथ मन्दिर के साथ उसका क्या सम्बन्ध रहा?

सद्योजात राशि, सोमराशि, चंद्रराशि, सूर्यराशि, भाव राशि के कार्य अभिलेखों में स्मरणीय हैं! हम उनके बारे में कितना जानते हैं?

हमें यह जरूर याद रखना चाहिए कि मेवाड़ में प्रचलित हारीत राशि की कहानियों का प्रमाण 17वीं सदी से मिलना शुरू होता है और इन कहानियों और बाणभट्ट की हर्षचरित की कहानियों में ज्यादा अंदर नहीं है। नैणसी री ख्यात में बाणभट्ट की उक्तियों का अनुवाद ही लगता है। खासकर बप्पा के प्रसंग में, मैंने मेवाड़ का प्रारंभिक इतिहास में इनकी तुलना की है।

आचार्य पद अनुरूप सर्व गुण पर्याप्त

- डॉ. रमेश 'मयंक' -

हीरा कुशल पारखी ही तराश पाते हैं
जो आत्म-शुद्धि का मूलमंत्र सुझाते हैं।
दोष न रह जाये संयम व्रत पालन में
स्व आलोचक का शिष्य को पाठ पढ़ाते हैं।।
संघी साथियों के दोष का बखान व्यर्थ
बुराई मिटाने मनोबल से बनो समर्थ।
निरपताप संताप पश्चाताप चिंतन से
शुद्ध जीवन में मिल पाता है विशेष अर्थ।।
शूल क्षम आफतें तो हर पथ में आयेंगी
सावधान रहो तो हर बाधा टल जायेगी।
धर्म के मार्ग पर चलने वाले रहेंगे
आत्म सुदृढ़ राहें खुलती चली जायेंगी।।
अन्य के आश्रय बिना तप में रत रहना
गोचरी सेवा कार्य को धार्मिक कहना।
शिक्षा सूत्रों के पठन पाठन करते सीखा
सबके साथ समूह वाली धार में बहना।।
जो शरीर वस्त्र की सजावट से रहे दूर
ध्यान तपस्या गूढ़ साधना में ही भरपूर।
दूर रह लोभ से त्याग वृत्ति को अपनाई
सदा रहे सहनशील कभी नहीं बने क्रूर।।
भूख-प्यास परीषहों में रखा है समभाव
सदा सरल सौम्य निर्मल ही रहा स्वभाव।
सत्य भाषण और संयम पालन में शुचिता
जैसे मानक गुणों से पाया आदर भाव।।
देव गुरु धर्म के प्रति श्रद्धा रखी अपार
सम विषय स्थिति में रहे शांति अवतार।
आगमों को कह आदर्श आचार संहिता
विनय प्रतिमूर्ति समझाते जीवन का सार।।
धैर्य धीरज युक्त ने नहीं रखा अभिमान
गुरु वंदन कर पाया श्री चरण में स्थान।
संसार में आने वाला प्राणी चाहता है मुक्ति
सुविचार शुभ कर्म-संगत ज्ञान का परिणाम।।
योगी रहे सदैव ही कामनाओं से दूर
लौकिक तज अलौकिक भावना रखी प्रचूर।
आहार कर्म उपाधि त्याग में सजग रहे
अप्रमाद प्रत्याख्यान संवर योग भरपूर।।
श्रमणाचार प्रतिक्रमण प्रायश्चित निष्णात
आचार्य पद अनुरूप सर्व गुण पर्याप्त।
मन वचन संयम तप कर्म निर्जरा अनुमोदन
गुण आगर की ख्याति होगी दिश-दिश में व्याप्त।।

जन्म से पूर्व ही लड्डूओं का बंटवारा

- इकराम राजस्थानी -

जिंदगी! एक छोटा सा लफ्ज़ लेकिन सफर कितना लंबा यादों का एक तवील सिलसिला। कितना मुश्किल होता है यादों के इस कारवां को चंद अल्फाज में समेट देना। आज मैं आपको अपने जन्म की वो दास्तान सुनाता हूं, जिसने मुझे इकराम बना दिया।

छह बहनों के पैदा होने के बाद मेरा इस दुनिया में आना हुआ। मेरी मां बेटे की उम्मीद छोड़ चुकी थी। दादा, पोते के इंतजार में थक चुके थे। जब मैं मां के गर्भ में था, दादा शायद अपनी जिंदगी के आखरी मकाम पर आ गए थे।

हमारे मोहल्ले में पुजारीजी रहते थे। उनकी बहू ने एक बेटे को जन्म दिया, नाम रखा कैलाश। आपसी स्नेह और भाईचारे का दौर था। मोहल्ले वालों ने दादा को खुश करने के लिए, कैलाश को उनकी गोद में लाकर डाल दिया और कहा, रहीम बाबा, आपको पोता हुआ है। दादा की आंखों से आंसू निकल पड़े।

उम्मीद का नया उजाला सारे घर में फैल गया। मोहल्ले के सब लोगों में दादा ने लड्डू बांट दिए। अफसोस! मैं दादा की मृत्यु के बाद उनके दसवें की फातेहा के दिन पैदा हुआ। वो कितना अच्छा दौर था जब लोग आपस में कितने प्यार से रहते थे। कैलाश को इकराम बताकर लोग खुशी मनाते थे। मुझे भी लगता है कि मेरे जीवन का अस्तित्व तो कैलाश से ही शुरू हो गया था।

शब्द कभी मरते नहीं हैं

- वेद व्यास -

जिस तरह बहता हुआ पानी और बोलता हुआ शब्द अपना रास्ता खुद बनाते हैं उसी तरह साहित्य में समाज और समय का संवाद भी अनवरत जारी रहता है। कौन लिखता है कौन पढ़ता है और कौन बोलता है उसकी प्रतिध्वनियां ही मनुष्य के मन और विचार में संवेदना का संसार रचती हैं। ज्ञान और विज्ञान के सभी विकास और सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समता और विषमता के सभी कुरुक्षेत्र, केवल सृजन और संघर्ष से उदित शब्द ही लड़ते हैं। आज 21वीं शताब्दी के सूचना और प्रौद्योगिकी के हृदयहीन बाजार में इसीलिए हमें कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि शायद शब्द कहीं खो गए हैं, मौन हो गए हैं या फिर संवेदनहीन हो गए हैं।

लेकिन धैर्य से देखें और सोचें तो दिखाई देगा कि समय का प्रत्येक सत्य, आज भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के बीच अकेला ही संचरण कर रहा है और सृजन के नित्य नए सेतु और वाद-विवाद तथा प्रतिवाद के आधार भी बना रहा है। साहित्य से समाज तक की यह शब्द यात्रा परिवर्तन की एक ऐसी मशाल है जो हजारों भाषाओं के साथ करोड़ों की जन चेतना में सद्भाव, सहिष्णुता और मानवीय सरोकारों की खिड़कियां खोलती रहती हैं। कोई 5 हजार साल से सभ्यता और संस्कृति का उज्ज्वल पथ यह साहित्य ही आलोकित कर रहा है क्योंकि शब्द कभी मरता नहीं है और नूतन विचरण करता रहता है।

राजस्थान को भारत और भारत को विश्व यह साहित्य का सत्य, शिव और सुंदरम् ही बनाता है और धर्म, जाति भाषा और क्षेत्रीयता की सरहदों को लांघकर शब्द की शाश्वत शक्ति और भक्ति का निर्माण भी करता है। राजस्थान ही में कोई दो हजार वर्ष की शब्द और साहित्य की चेतना यह बताती है कि राजपाट और सुख-दु:ख बदलते रहते हैं लेकिन रेत और पानी का रिश्ता कभी नहीं बदलता। धरती और आकाश की इच्छाएं कभी नहीं हारती और शब्द की विश्वसनीयता का गुरुत्वाकर्षण कभी नहीं मरता। आज हमारे समाज में दुर्भाग्य से मनुष्य और प्रकृति के बीच एक ऐसा मनमुटाव बढ़ रहा है कि लोग अपने भूत, भविष्य और वर्तमान की त्रिकाल छाया से ग्रस्त हैं और सामाजिक, आर्थिक गैर बराबरी के जलवायु परिवर्तन से व्याकुल और शोकाकुल अधिक हैं।

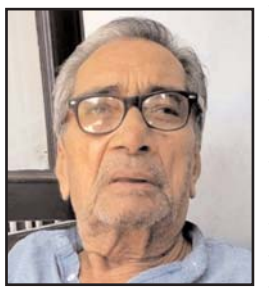

इधर टैक्नोलॉजी लगातार मनुष्य को दिशाहीन और पैसे की खोज में समाज को संवेदनहीन और केवल सुख-शांति की आवश्यकता, हमारे जीवन दर्शन को अत्यधिक असुरक्षित बना रही है तो उधर सत्ता और व्यवस्था की आदिम हिंसक प्रवृत्तियां, शब्द और सत्य और सत्य पर निरंतर हमले कर रही हैं। फिर अराजकता के बीच अविश्वनीयता का एक ऐसा माहौल अब बन गया है कि वर्षा ऋतु में कोयल जैसे मौन हो जाती है और मेंढ़क जैसे मुकर-वाचाल हो जाते हैं वैसे ही लेखक और साहित्यकार भी बाजार, मीडिया और राजनीति के कोलाहल में आजकल अपने को अनसूना महसूस कर रहा है।

लेकिन मित्रों! आप सब जानते हैं कि शब्द की नदी सरस्वती भी समय और अज्ञान के अंधेरे में कई बार मन से ओझल हो जाती है लेकिन वह देर-सेवर बूंद-बूंद बनकर, अग्नि परीक्षा का सृजन भी करती है और जन्म से मृत्यु तक मनुष्य की प्राण वायु बनकर बोलती भी है। वैदिक ऋचाओं से लेकर मीरांबाई के पदों तक और रामायण से लेकर महाभारत तक यह शब्द ही साहित्य और समाज को समय के सभी प्रश्नों से मुठभेड़ करना सिखाता है। यह शब्द ही कभी निर्गुण और सगुणधारा बनकर बहते हैं तो यह सृजन का सरोकार ही कभी युद्ध और शान्ति का भाग्य लिखता है तो यह क्रोंचवध ही कभी शिकारी को ऋषि वाल्मीकि बनाता है तो कभी रवीन्द्रनाथ बनकर घर-घर में गाया जाता है तो कभी स्वामी विवेकानंद बनकर विश्व को धर्म की सनातन सहिष्णु व्याख्या देता है तो कभी भीमराव अम्बेडकर बनकर मनुष्य होने का अधिकार और सम्मान भी सिखाता है।

इस तरह शब्द कभी निरर्थक, लाचार और उदास नहीं होता तथा वह उपेक्षा और विस्मृति के गर्भ में रहकर भी अधिक प्रखर और अमृतधारा बन जाता है। ऐसे में शब्द और साहित्य का लोकतंत्र-सदैव राजनीति के आगे चलने वाली मशाल ही होता है और राजा की हिंसा में नहीं अपितु प्रजा (जनता) की अहिंसा में ही फलता-फूलता है। सामाजिक चेतना का प्रथम सृजनकर्ता और निर्माता यह शब्द ही है और साहित्यकार इसी पुनर्जागरण का प्रतिफल रचता और गाता है क्योंकि मनुष्य का शाश्वत सत्य तो गरीब और सर्वहारा की मंगलध्वनि में ही युगों-युगों तक प्रवहमान बना रहता है।

अत: घबराइए मत! शब्द और साहित्य को समाज के भीतर व्याप्त गैर बराबरी, हिंसा-प्रतिहिंसा और झूठ-सच को उजागर करने में अर्पित करते हुए वर्तमान समाज को भविष्य का नया सपना दीजिए। शब्द और साहित्य की प्रासंगिकता फिर आज यही है कि यथास्थिति को बदलने का जोखिम उठाएं। रागदरबारी को छोड़कर राग भैरवी और राग कल्याणी गायें। मनुष्य होने की गरिमा का महाकाव्य सुनाएं और दसों-दिशाओं में व्याप्त मुक्ति संग्राम की जनचेतना को एकजुट बनाएं।

कालजयी कथाकार मुंशी प्रेमचन्द

- डॉ. पूरन सहगल -

प्रेमचन्द अपने युग में भी प्रासंगिक थे और आज भी प्रासंगिक हैं। आने वाले युगों तक भी वे प्रासंगिक ही रहेंगे। वे कालजयी लेखक हैं। वे धरती पुत्र हैं। धरती के लेखक हैं। आकाशीय उड़ानों से वे कभी मोहग्रस्त नहीं हुए। इसलिए वे भारतीय मन मनीषा के अंतरतम हकीम हैं।

प्रेमचन्द जैसे जमीन से जुड़े हिम्मत, हौसला और हिमाकत वाले लेखक पर कलम चलाना सहज तो नहीं हो सकता। वे मूल रूप से शिक्षक थे। शिक्षक जब भी जागरूक हो जाता है तब खरी-खरी कहने से न तो चूकता है और न ही भयभीत होता है। तब वह छड़ी सिखावन में भी नहीं चुकता। प्रेमचन्द शनै-शनै धनपत से लोकपत होते चले गए। वे शोषितों, पीड़ितों, वंचकों, किसानों, श्रमिकों के मुखर प्रवक्ता के रूप में पैनी कलम के भरोसेमंद रचनाकार के रूप में हमारे सामने प्रकट होते हैं। उन्होंने स्वयं स्पष्टोक्ति की है कि, मेरी कहानियों में पदाधिकारी, महाजन, सामंत, पुजारी जैसे आपाधापी वाले लोगों का लेखा मिलेगा जो गरीबों, असहायों और वंचितों का खून चूसते मिलेंगे। गरीब, किसान, अछूत और दरिद्र उनके आघात सहकर भी अपने धर्म और मनुष्यता को अपने हाथ से न जाने देंगे। ऐसे लोगों ने अपने उस घृणित जीवन को ही अपनी नियति मान लिया था। वे विवश और असहाय थे।

प्रेमचन्द के साहित्य में जिस औपनिवेशिक सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है उसे हम मानव मुक्ति का रिनांसा मान सकते हैं। यही कारण है कि प्रेमचन्द के साहित्य में भारतीय यथार्थवादी रचनाशीलता एवं रोमानी भावुकता का अभाव या कहें झलक तक नहीं दिखलाई देती जबकि वे उर्दू से हिन्दी में प्रविष्ट हुए थे। उर्दू की रोमानी शायरी का प्रभाव उन पर पड़ना स्वाभाविक था। वे अत्यंत सावधानीपूर्वक उस रोमानियत के प्रभाव एवं मोहिकता से स्वयं को बचा गए। उनके सहित्य का जो यथार्थवाद है वह आदर्शवाद पर आधारित न होकर वास्तविक यथार्थ है। जमीनी सच्चाई पर आधारित यथार्थ है। एक ऐसा सच है जो हमें भीतर तक विचलित कर देने की क्षमता रखता है।

हम उनकी बहुचर्चित 'पूस की रात' कहानी को ही देखें, घर में चार पैसों का जुगाड़ हो जाने पर पूस की ठण्ड का मुकाबला करने के लिए एक कंबल खरीदने की गुंजायश बन गई है परन्तु आर्थिक रिश्तों का अंतर्विरोध यह है कि, छोटे किसान साहुकारों के कर्जे के भार के नीचे दबे कुलबुला रहे हैं। उन्हें जब-तब कर्जा लौटाने की केवल ताकीद ही नहीं भय भी दिखाया जाता है। ऐसी स्थिति में वह तय करना चाहता है कि उसे पहले कर्ज चुकाना चाहिए अथवा अपनी देह की रक्षा करना चाहिए। ऐसी स्थिति में उसके सामने लोक-परलोक की जड़ीभूत बेड़ियाँ जकड़ने लगती हैं और वह कर्ज चुकाने को प्राथमिकता देता है।

बिना कंबल के पूस की भयानक रात का सामना करते हुए, पूरी प्रकृति के अन्य तमाम उपकरण एक-एक करके कहानी में शामिल हो जाते हैं। जबरा कुत्ता, उगाई गई फसलें, सुखे पत्तों का ढेर, आग का अलाव, नील गायें ये सभी उस कहानी के पात्र बन जाते हैं। बल्कि कहानी को लक्ष्य तक पहुँचाने के हेतु बन जाते हैं। इसी कारण यह कहानी हमारे कलेजे के आरपार एक पैना दर्द पैदा कर समाप्त हो जाती है।

ऐसी ही उनकी विश्व चर्चित कहानी 'कफन' भी है। जितनी विचारोत्तेक यह कहानी है उतनी ही इसकी आलोचनाएँ भी होती रही हैं। वस्तुत: आलोचनाओं ने इस कहानी का सामर्थ्य और भी अधिक बढ़ा दिया है। 'कफन' को हम मानव-प्राणी की मृत्यु के पश्चात ढकने वाले एक वस्त्र के रूप में जानते हैं किंतु प्रेमचन्द की यह कहानी एक मानवजन्य त्रासदी का हृदयविदारक दृश्य हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देती है।

प्रसव के दौरान बुधिया और बच्चे का मर जाना अर्थात वर्तमान और भविष्य का मर जाना स्पष्ट है। समस्या यहाँ नहीं है। समस्या है उनकी जो लोग शेष बचे हैं। जिनके समक्ष मौत ताण्डव कर रही है। घीसू और माधव की असहनीय और अनियंत्रित भूख पेट में आग की तरह उन्हें झुलसा डालना चाहती है। कफन की शक्ल में जो दान देता है, वह उसी भूख की आग में एक आहूति बनकर जलने लगता है। इसे हम क्या कहेंगे? क्या घीसू और माधव के भीतर कुण्डली मारे जो अजगर बैठा है उसका नतीजा है? कफन कहानी का यह यथार्थ भले ही अत्यंत घृणित लगे किंतु इसको नकारा भी कैसे जा सकता है? हजार आलोचनाओं के बावजूद भी इस मानव सत्य को कैसे नजरअंदाज किया जा सकता है? वस्तुत: प्रेमचन्द का साहित्य अपनी इस क्रूरतम जड़ता, रुढ़िवादिता, वैचारिक कुंठताओं से अपनी लेखकीय लड़ाई करता हुआ जूझ रहा था। वे अपने समय के विविध स्तरीय संघर्षों एवं चुनातियों से रू-ब-रू हो रहे थे। उन्हें ललकार रहे थे। वे अंतर्मन से उसे अभिव्यक्त कर देला चाहते हैं। उन्होंने वही किया भी। प्रेमचन्द के साहित्य में जिस औपनिवेशिक सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है उसे हमें 'मानव की मुक्ति' की जमीन की तरह ग्रहण करना होगा। प्रेमचन्द की परम्परा का यह अर्थ कदापि नहीं है कि जनवाद और प्रगतिशीलता के नाम सब कुछ शामिल कर लिया जाय लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि उसे मनमाने ढंग से परिभाषित किया जाय। उसके लिए हमें समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर उनके साहित्य का अध्ययन करना होगा।

प्रेमचन्द के साहित्य में और उस परम्परा में बौद्धों, सिद्धों, नाथों और निर्गुण परम्परा का स्वाभाविक विकास हम देख सकते हैं। इस परम्परा में लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के लिए तो जगह है किंतु ब्राह्मणवाद और साम्प्रदायिकता, पूंजीवाद, सामंतवाद जैसी जड़तामूलक परम्पराओं के लिए कोई जगह नहीं है।

प्रेमचन्द की परम्परा जितनी प्रगतिशील है उतनी ही आधुनिक भी है। वह सबसे पहले दलित और स्त्री मुक्ति की परम्परा है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द की परम्परा मेहनतकशों की मुक्ति का समर्थन करती दिखती है तो वह दलित और स्त्री मुक्ति के आंदोलनों से भी जुड़ जाती है। वह यदि शिक्षित मध्यम वर्ग से अन्त: संघर्ष स्थापित करती है जो मुक्तिबोध सहित कई रचनाकारों की रचनात्मकता का आधार रहा है। यदि प्रेमचन्द की परम्परा में मध्यम वर्ग का आत्मसंघर्ष हमें नहीं दृष्टिगोचर होता तब हमें उनके साहित्य का पुनरावलोकन करना चाहिए।

साम्प्रदायिकता के प्रति उनकी कलम निर्भयता के साथ चली। उनका पहला उपन्यास 'सेवा सदन' साम्प्रदायिकता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर देता है। ऐसा ही उनका अत्यंत चर्चित उपन्यास 'गोदान' है। यह उपन्यास पितृसत्तात्मक नियंत्रण को तोड़ने से अर्थात आज का जो स्त्री विमर्श है वह औरतों के उत्पादक या श्रम शक्ति पर मर्दों के नियंत्रण के विरूद्ध तो आवाज बुलन्द करता ही है औरतों की प्रजनन शक्ति पर मर्दों के विरूद्ध भी है। वह स्त्री की यौनिकता का पक्षधर तो है ही, स्त्री की गतिशीलता का भी पक्षधर है। इसके अतिरिक्त सम्पति तथा अन्य आर्थिक संसाधनों पर भी स्त्रियों का स्वयं का अधिकार हो इसकी भी पैरवी करता है। आज हम जिस स्त्री अधिकार की मांग कर रहे हैं वह प्रेमचन्द ने नवे दशक में ही उठा दी थी।

उनकी कथाएँ अनहोनी, ईदगाह, पंच परमेश्वर, शतरंज के खिलाड़ी आदि हमारे समाज, राजनीति, अर्थनीति आदि व्यवस्थाओं पर अत्यंत स्पष्ट दृष्टिकोण से अपनी स्पष्ट अभिव्यक्ति करती है। 'गोदान' में प्रेमचन्द ने जिन रूढ़िगत चली आ रही किसानों की जिस आर्थिक विपन्नता को प्रगट किया है वह अत्यंत त्रासद है। तत्कालीन आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों पर गोदान के माध्यम से जिस प्रकार प्रकाश डाला गया है वह केवल और केवल प्रेमचन्द जैसे लोकदृष्टा लेखक के ही बलबूते की बात है।

प्रेमचन्द ही थे जिन्होंने हिन्दी कहानी को जीवन संग्राम और समाज तथा राष्ट्र की समस्याओं को पूरी क्षमता से प्रकट करने की सक्षमता प्रदान कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने ठाकुर का कुआ, सद्गति, दूध का दाम, मंत्र जैसी कहानियों के माध्यम से जिस दबंगता से अस्पृश्य दलितों की त्रासद स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है वह आज भी एक लम्बित प्रश्न की तरह हमें चिढ़ा रहा है। उसी प्रकार मंत्र कहानी में समाज सुधारक लीलाधर चौबे की सारी पोल खोलकर रख दी है। धार्मिक पाखण्डों का पर्दाफाश करने में प्रेमचन्द ने कोई भी कोर कसर नहीं छोड़ी। इसी प्रकार 'कल्याणी' उपन्यास के माध्यम से बालविवाह, वृद्ध विवाह, अशिक्षा, पारम्परिक वैमनस्य का उन्होंने अत्यंत मार्मिक एवं प्रभावशाली चित्रण कर समाजोत्थान का द्वार खटखटा दिया है।

प्रेमचन्द अपने युग में भी प्रासंगिक थे और आज भी प्रासंगिक हैं। आने वाले युगों तक भी वे प्रासंगिक ही रहेंगे। वे कालजयी लेखक हैं। वे धरती पुत्र हैं। धरती के लेखक हैं। आकाशीय उड़ानों से वे कभी मोहग्रस्त नहीं हुए। इसलिए वे भारतीय मन मनीषा के अंतरतम हकीम हैं। वे उसकी रगों को, धड़कनों और चिंतनों को भलीभाँति पहचानते थे तथा उसके लिए कड़वी दवाइयों का निदान करने में चूके भी नहीं।

इसलिए कहा गया है- 'कड़वी भेशज बिन पिये मिटे न तन को ताप' उन्होंने समाज को कटु किंतु सत्य स्थितियों से अवगत करवाने के लिए सदा अपनी तत्परता दिखाई। वे हमारे हिन्दी साहित्य आकाश के जाज्ल्यमान नक्षत्र की भाँति सदा ज्योतिमय बने रहेंगे।

बाजार / समाचार

कानोड़ के शहीद अभिनव नागौरी

उदयपुर जिले के छोटे से कस्बे ने विभिन्न क्षेत्रों की अनेक प्रतिभाओं को जन्म दिया है। उनमें से अभिनव नागौरी मेवाड़ क्षेत्र के पहले युवा थे, जिन्होंने नौसेना में पायलट बनकर पूरे मेवाड़ का ही नहीं बल्कि देश का नाम रोशन किया। वे भारतीय

नौसेना में मेवाड़ के पहले पायलट बने और 'सब लेफ्टिनेन्ट' के पद पर नियुक्त हुए और पदोन्नति उपरांत 'लेफ्टिनेन्ट' बने।

उल्लेखनीय है कि अभिनव का बचपन स्वतंत्रता सेनानी नाना-नानी की गोद में बीता। नाना स्वाधीनता आंदोलन में देशहित के लिए जेल में रहे। उनका प्यार, दृढ़ निश्चय स्वभाव और समर्पण अभिनव के व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला बन गया। विद्यालयी शिक्षा सेंट पॉल स्कूल, उदयपुर से हुई। स्काउटिंग में रहकर अभिनव करा एडवेंचर की ओर झुकाव हो गया। फिर एनसीसी एयर विंग के कैडेट बने। तीन चार नामी कंपनियों में ऑफर मिलने के बावजूद अभिनव ने भारतीय नौसेना में जाने का निश्चय किया लकिन दिलो दिमाग में मातृभूमि की सेवा करने के जुनून ने उन्हें भारतीय नौसेना में पायलट बना दिया। बाद में उन्हें गोवा में नौसेना की कमान आईएएएस हंसा के कोबरा स्क्वाड्रन में डॉर्नियर विमान उड़ाने के लिए पायलट के रूप में पदस्थापित किया गया। हमेशा की तरह अभिनव पूरे कॉन्फिडेंस के साथ 24 मार्च 2015 रात्रि मे अपने कमांडर के साथ नियमित उड़ान पर थे, तभी अचानक विमान में तकनीकी खराबी आने से उनका विमान समुद्र में जा गिरा। 24 वर्ष की अल्पायु में अभिनव देशहित में शहीद हो गए और हजारों युवाओं के प्रेरक और पथ प्रदर्शक बन गए।

कहना नहीं होगा कि अभिनव के पिता धर्मचंद तथा माता सुशीलादेवी दोनों ही उच्च शिक्षा अधिकारी थे जिनसे अभिनव निरन्तर प्रभावित होते रहे। उदयपुर के शिक्षा विभाग ने भुवाणा में शहीद लेफ्टिनेन्ट अभिनव नागौरी सीनियर सेकण्डरी स्कूल तथा नगर निगम ने एक पथ का नाम रख कर उनके देशहित के लिए समर्पण को स्थायी स्मृति दी।

मोटोरोला ने लॉन्च किया मोटोरोला एज 50

उदयपुर (ह. सं.)। मोटोरोला ने मोटोरोला एज 50 को भारत में लॉन्च किया है। मोटोरोला के प्रीमियम एज सीरीज़ में शामिल किए गए सबसे नए स्मार्टफ़ोन के रूप में, मोटोरोला एज 50 में एमआईएल- 810एच मिलिट्री ग्रेड ड्यूरेबिलिटी और आईपी68 अंडरवॉटर प्रोटेक्शन जैसे कई बेमिसाल फीचर्स मौजूद हैं, और इसी वजह से यह आईपी68 एमआईएल-810एच मिलिट्री ग्रेड सर्टिफाइड सबसे टिकाऊ स्मार्टफ़ोन है। इसमें सोनी सेंसर 700सी के साथ इस सेगमेंट का सबसे शानदार मोटो एआई पावर्ड कैमरा लगाया गया है, साथ ही इसमें 6.7, 1.5 के सुपर एचडी +एचडीआर 10+ कर्व्ड डिस्प्ले के अलावा ढेर सारे प्रीमियम फीचर्स भी मौजूद हैं। लॉन्च के समय मूल्य 8 जीबी +256 जीबी 27,999 रुपये है।

मोटोरोला इंडिया के मैनेजिंग डायरेक्टर टी.एम. नरसिम्हन ने कहा कि मोटोरोला एज 50 बड़ी संख्या में स्मार्टफोन यूजर्स की महत्वपूर्ण ज़रूरत को पूरा करता है, क्योंकि यह बोल्ड एवं ड्यूरेबिलिटी पर आधारित होने के साथ-साथ प्रीमियम, अल्ट्रा-स्लीक डिज़ाइन बिल्कुल सही मिश्रण है। आईपी68अंडरवाटर प्रोटेक्शन और ड्यूरेबिलिटी के लिए अमेरिका के रक्षा विभाग से एमआईएल-810एच मिलिट्री ग्रेड सर्टिफिकेशन हासिल करने वाला यह दुनिया का सबसे स्लिम स्मार्टफ़ोन है, जो सबसे बेहतरीन कैमरा, डिस्प्ले और एडवांस्ड मोटो एआई अनुभव की पेशकश करते हुए किसी भी पहलू पर समझौता नहीं करता है। हमें पूरा यकीन है कि, मोटोरोला एज 50 हमारे ग्राहकों को बड़े पैमाने पर बदलाव लाने वाले सबसे शानदार स्मार्टफ़ोन का अनुभव प्रदान करेगा। मोटोरोला एज 50 के लॉन्च के साथ, मोटोरोला की ओर से बेहद सहज हेलो यूआई की पेशकश की गई है जिसमें मोटो के सभी ऐप्स एक ही स्थान पर उपलब्ध हैं। साथ ही नवीनतम एंड्रॉयड 14 के साथ 2 ओएस अपग्रेड और 3 साल के सिक्योरिटी अपडेट का आश्वासन भी मिलता है।

जिंक ने एशिया का पहला लो कार्बन 'ग्रीन' जिंक इकोजेन लॉन्च किया

उदयपुर (ह. सं.)। हिन्दुस्तान जिंक लि. ने अपना लो कार्बन ग्रीन जिंक ब्रांड इकोजेन लॉन्च किया। एसएंडपी ग्लोबल सीएसए के अनुसार विश्व की सबसे

सस्टेनेबल धातु और खनन कंपनी के रूप में मान्यता प्राप्त यह कंपनी एशिया की पहली जिंक उत्पादक है जिसने दुनिया भर में अपने ग्राहकों के लिए अपनी तरह का पहला लो कार्बन ग्रीन जिंक ऑफर किया है।

हिंदुस्तान जिंक की चेयरपर्सन और वेदांता समूह की गैर-कार्यकारी निदेशक प्रिया अग्रवाल हेब्बर ने कहा किइकोजेन को एक प्रसिद्ध वैश्विक स्थिरता परामर्श फर्म द्वारा जीवन चक्र मूल्यांकन, एलसीए के माध्यम से लो-कार्बन जिंक के रूप में प्रमाणित किया गया है और इसका कार्बन फुटप्रिंट प्रति टन उत्पादित जिंक पर एक टन से भी कम कार्बन समतुल्य है, जो वैश्विक औसत से 75 प्रतिशत कम है। जिंक का प्राथमिक अनुप्रयोग स्टील को जंग से बचाने के लिए गैल्वनाइजेशन के लिए है स्टील, इंफ्रास्ट्रक्चर, ऑटोमोटिव और सनराइज सेक्टर जैसे अक्षय ऊर्जा, इलेक्ट्रॉनिक्स, हाई-टेक विनिर्माण, ऊर्जा भंडारण, रक्षा और इलेक्ट्रिक मोबिलिटी जैसे क्षेत्रों में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

मुख्यकार्यकारी अधिकारी अरुण मिश्रा ने कहा कि इस नवीनतम पेशकश से जिंक के इकोजेन के साथ एक टन स्टील को गैल्वनाइज करने में उनकी मूल्य श्रृंखला में लगभग 400 किलोग्राम कार्बन उत्सर्जन से बचाव होगा। नवीनतम पेशकश, कम कार्बन ग्रीन जिंक को इकोजेन ब्रांड किया गया है। शुरुआत के लिए इकोजेन एक स्पेशल हाई ग्रेड (एसएचजी) जिंक उत्पाद संस्करण के रूप में उपलब्ध है इस कम कार्बन वाले पर्यावरण अनुकूल जिंक का निर्माण अक्षय ऊर्जा का उपयोग करके किया जा रहा है और इसका वैश्विक तापमान वृद्धि क्षमता मूल्य बाजार में सबसे कम है, जो वैश्विक औसत से लगभग 75 प्रतिशत कम है। उत्पाद की प्रमाणन प्रक्रिया एक मास-बैलेंस दृष्टिकोण पर आधारित है और इसे क्रैडल टू गेट पद्धति का उपयोग कर किया गया है।

रैडिसन ब्लू पैलेस रिज़ॉर्ट एण्ड स्पा को मिला बेस्ट डेस्टिनेशन वेडिंग रिज़ॉर्ट ऑफ द ईयर (नॉर्थ) अवार्ड

उदयपुर (ह. सं.)। रैडिसन ब्लू पैलेस रिज़ॉर्ट एण्ड स्पा, उदयपुर को द इकोनॉमिक टाइम्स एमआइसीई एण्ड वेडिंग टूरिज्म अवार्ड में 'बेस्ट डेस्टिनेशन वेडिंग रिज़ॉर्ट ऑफ द ईयर' (नॉर्थ) का अवार्ड मिला है। ईटी ट्रैवेल वर्ल्ड द्वारा ऑरिका होटल्स एण्ड रिजॉर्ट्स, मुंबई में आयोजित कार्यक्रम में इस प्रॉपर्टी को सम्मानित किया गया।

रैडिसन ब्लू पैलेस रिज़ॉर्ट एण्ड स्पा, उदयपुर के चेयरमैन एवं एमडी सोमेश अग्रवाल ने कहा कि बेस्ट डेस्टिनेशन वेडिंग रिज़ॉर्ट ऑफ 2024 (नॉर्थ) कैटेगरी में हमारी जीत वर्षों की हमारी कड़ी मेहनत का सबूत है, जो हमने एक डिमांडिंग वेडिंग डेस्टिनेशन के तौर पर खुद को स्थापित करने के लिये समर्पित होकर की है। शुरूआत से ही हमने वेडिंग इंडस्ट्री पर

ध्यान दिया है और उद्योग के प्रतिष्ठित फोरम्स पर हमारे प्रयासों को सम्मान मिलना बड़ी खुशी की बात है। हमारी कोशिशों को पहचान देने के लिये हम जूरी और ईटी एमआइसीई एण्ड वेडिंग टूरिज्म अवार्ड्स की टीम के आभारी हैं। द इकोनॉमिक टाइम्स एमआइसीई एण्ड वेडिंग टूरिज्म अवार्ड्स उन कंपनियों और अग्रणी ब्रैंड्स की उपलब्धियों तथा योगदानों को सम्मानित करते हैं, जो एमआइसीई टूरिज्म, एमआइसीई-टेक कंपनियों, ट्रैवेल एग्रीगेटर्स, होटल्स, एयरलाइंस, टूर ऑपरेटर्स, सर्विस प्रोवाइडर्स, वेडिंग एवं इवेंट प्लानर्स के साथ काम करती हैं। कंपनियाँ और ब्रैंड्स अपने-अपने व्यवसायों में नये मापदण्ड स्थापित कर रहे हैं। इस दूसरे संस्करण में मंत्रियों, राजदूतों समेत 300 से ज्यादा प्रतिनिधियों ने शिरकत की।

स्टर्लिंग हॉलीडे रेसोर्ट्स के तीसरे रेसोर्ट का उद्घाटन

उदयपुर (ह. सं.)। भारत के अग्रणी लैज़र हॉस्पीटेलिटी ब्रैंड स्टर्लिंग हॉलीडे रेसोर्ट्स ने राजस्थान में स्टर्लिंग अरावली उदयपुर के खुलने की घोषणा की है। इसके साथ ही, यह राज्य में स्टर्लिंग का छठा और उदयपुर में तीसरा रेसोर्ट है। स्टर्लिंग हॉलीडे रेसोर्ट्स लि. के मैनेजिंग डायरेक्टर एवं सीईओ विक्रम लालवानी ने कहा कि लगभग 2.5 एकड़ लैंडस्केप्ड आउटडोर की सुविधा वाले इस रेसोर्ट से अरावली की पहाड़ियों का खूबसूरत नज़ारा दिखायी देता है और इसे आइकॉनिक डेस्टिनेशन वैडिंग वैन्यू के तौर पर,

उदयपुर में खोला गया है। रेसोर्ट में 40,000 वर्गफुट में फैले ग्रीन लॉन्स ओर मल्टीपल बैंक्वेट हॉल हैं जिनमें करीब 5000 मेहमानों की क्षमता है।

स्टर्लिंग अरावली उदयपुर के मालिक राजकुमार बापना ने कहा कि यह स्टर्लिंग अरावली उदयपुर के लिए वाकई खास मौका है। हमारा रेसोर्ट अपने भव्य डिजाइन और सुविधाओं के चलते एक लैंडमार्क डेस्टिनेशन है। हम स्टर्लिंग के साथ भागीदारी कर प्रसन्न हैं। राजस्थान में स्टर्लिंग की प्रॉपर्टीज़ में स्टर्लिंग जयसिंहगढ़ उदयपुर, स्टर्लिंग बलीचा उदयपुर, स्टर्लिंग माउंट आबू, स्टर्लिंग री-वाइल्ड सरिस्का तथा स्टर्लिंग पुष्कर शामिल हैं।

फील्ड क्लब की जमीन 93 सालों से हमारे पास है, सरकार ने हमें इस पर लोन दिया, हमारी भूमि पर सोसायटी ने इंद्राज दुरूस्ती कराया : मनवानी

उदयपुर (ह. सं.)। फील्ड क्लब की जमीन पर एसडीएम बड़गांव की और से इंद्राज दुरूस्ती को लेकर दिए आदेश पर फील्ड क्लब के पदाधिकारियों ने कहा है कि 93 साल से यह जमीन हमारे पास है। राज्य सरकार ने इस पर हमें तब लोन भी दिया। हमने फतहपुरा पर चौराहा विस्तार के लिए क्लब की जमीन भी दी जिसका अवार्ड भी हमें दिया गया। यह जमीन फील्ड क्लब सोसायटी की है। एसडीएम कोर्ट का आदेश तो इंद्राज दुरूस्ती का हुआ है। इसके अलावा बाकी जितनी भी बातें फैलाई जा रही हैं वे सब मिथ्या है। यह जानकारी प्रेसवार्ता में फील्ड क्लब के पदाधिकारियों ने दी।

क्लब के सचिव उमेश मनवानी, उपाध्यक्ष राकेश चोर्डिया, संयुक्त सचिव पंकज कनेरिया, पूर्व सचिव सुधीर बख्शी, ट्रेजरार कमल मेहता और क्लब के अधिवक्ता अविनाश कोठारी ने कहा कि फील्ड क्लब 1931 में बना था और तत्कालीन महाराणा ने हमें यह जमीन आवंटित की थी। उस समय राजस्थान राज्य और सरकार का वजूद नहीं था। राजस्थान के पुर्नगठन के समय सरकार ने इसे वैद्य माना और राजस्व रिकार्ड में इसकी एंट्री कर दी गई।

उमेश मनवानी ने बताया कि राजस्व इंद्राज में त्रुटि के कारण यह जमीन यूआईटी के नाम चढ़ा दी गई जबकि जमीन फील्ड क्लब सोसायटी के नाम थी। आज भी ये जमीन फील्ड क्लब के नाम है और उसी क्रम में हमने इन्द्राज शुद्धि का एसडीओ बड़गांव कोर्ट में वाद लगाया था जिसका फैसला हमारे पक्ष में आया है। संपूर्ण पत्रावलियों को जांचने, वकीलों द्वारा रखे गए पक्ष के बाद यह निर्णय किया गया है। जिन्हें इन तथ्यों की जानकारी नहीं है उनके द्वारा भ्रांतियां फैलाई जा रही है। उन्होंने कहा कि जिला कलेक्टर के आदेश पर जो जांच कमेटी बनी है उसमें भी यही आएगा की क्लब की जमीन के रिकॉर्ड में जो

त्रुटि हुई है उसे ठीक किया गया है। फिर भी हमें प्रशासन की और से बुलाया गया तो हम हमारा पक्ष भी रखेंगे।

अविनाश कोठारी ने कानूनी पक्ष रखते हुए स्पष्ट किया कि कानूनी तौर पर जहां से यह गलती हुई है वहीं से दुरुस्त होगी ऐसे में फील्ड क्लब की ओर से एसडीएम कोर्ट जहां से रिकॉर्ड में त्रुटि हुई वहां उसे ठीक करने के लिए दावा लगाया और फैसला फील्ड क्लब के पक्ष में हुआ। जब फील्ड क्लब जमीन को किसी सरकारी अधिकारी द्वारा त्रुटिवश बिला नाम घोषित किया गया और जैसे ही पता चला तो क्लब की और से 3 मई 2024 को इंद्राज त्रुटी को शुद्ध करवाने का एसडीएम कोर्ट में दावा पेश किया। उसके बाद दोनों पक्षों को सुनकर एसडीएम कोर्ट ने फैसला क्लब के पक्ष में दिया।

अधिवक्ता कोठारी ने कहा कि यह जमीन क्लब के नाम थी तब ही तो राजस्थान सरकार ने देवस्थान विभाग के मार्फत पांच लाख का लोन दिया गया। किसी कारणवश हम वह लोन नहीं चुका पाए तब फील्ड क्लब की पांच बीघा पांच विसवा जमीन सरकार ने कुर्क की थी।

राकेश चोर्डिया ने बताया कि जब फतहपुरा चौराहा का विस्तार किया जा रहा था तब 2001 में यूआईटी ने 4100 स्कवायर फीट जमीन ली जिस पर 13.73 लाख का अवार्ड क्लब को जारी किया था। पंकज कनेरिया ने बताया कि पिछले 93 सालों से यूआईटी, नगर निगम ने या सरकार की किसी भी एजेंसी ने हमें जमीन के बारे में ऐसा कोई नोटिस जारी नहीं किया। यह मात्र रेवेन्यू रिकॉर्ड में गलत एंट्री होने से हुआ था जिसकी शुद्ध करवाने के लिए हमने वाद दायर किया और फैसला हमारे पक्ष में आया। सुधीर बख्शी व कमल मेहता ने बताया कि यह सामान्य सी बात है कि राजस्व रिकार्ड में कोई गलती हुई है तो उसके ध्यान में आते ही उसे ठीक कराने के लिए संबंधित जो प्रक्रिया है उसे अपनाते हुए दावा किया और उसमें हमारे पक्ष में फैसला हो गया।

मुख को ओट देते.....

(पृष्ठ तीन का शेष)

नेपाल के तराई क्षेत्र में थारू, धीम, राजवंशी और सतार जनजातियां पाई जाती हैं जिनकी बहुत-सी परम्पराएं व नृत्य हिन्दू धर्म से प्रभावित हैं। राजवंशी आदिवासियों द्वारा बनाए गए मुखौटों का प्रयोग रामलीला के दौरान वानर बनने के लिए किया जाता है। मुखौटे का प्रदर्शन सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने का कार्य करता है। दूसरों की जीवनशैली, परम्परा व उससे जुड़े विश्वासों का मजाक उड़ाकर वे अपनी परम्पराओं और विश्वासों की रक्षा करते हैं।''

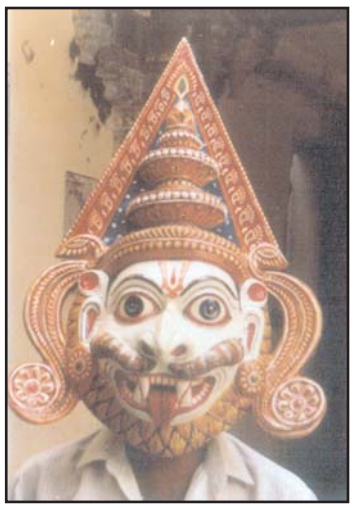

कहने का तात्पर्य यह है कि पुतली जहां अपने समग्र रूप में एक मुखौटा है वहां मानव जब रंगमंच पर अभिनय हेतु आता है तब जैसा वह रूप भरता है उसी आशय का वैसा ही मुखौटा धारण करता है।

मुखौटा लगाने से प्रथम तो अभिनेता मुखौटाधारी को अपने मुंह के विविध भावों की अभिव्यक्ति से छूट मिल जाती है लेकिन होशियार और दक्ष कलाकार अपने मुखौटे लगे मुंह से भी कई प्रकार की अभिव्यक्ति प्रकट करने में सक्षम होते हैं। मुखौटाधारी की एक खासियत यह भी है कि दूर बैठा दर्शक भी उसकी कला को आसानी से देख समझ सकता है।

डॉ. भानुशंकर मेहता के अनुसार, आदिम युग के शैल गुहा चित्रों में मुखौटों का अंकन हुआ है। मुखौटा आदिवासी को कुदृष्टि, जादू-टोने और शिकार में मृत पशु की आत्मा से बचाता है। भयानक आकृति वाले मुखौटे आने वाले खतरे से सतर्क करते हैं। धार्मिक कर्मकांडों में, खेतों में उत्पादन बढ़ाने, परिवार में संतान संख्या वृद्धि के लिए, पितरों के प्रति श्रृद्धा ज्ञापन हेतु, दुश्मनों, दुष्ट आत्माओं और देवी प्रकोप से त्राण पाने के लिए मुखौटों का प्रयोग होता रहा है।

बसंत निरगुणे ने ठीक ही कहा कि प्रत्येक व्यक्ति का मुख एक अनुपम मुखौटा है। ईश्वर की इस सृष्टि में एक दूसरे मनुष्य का चेहरा नहीं मिलता, यह एक अद्‌भुत रहस्य है। चेहरे पर भाव-विचार के हजारों रंग और रूप देखे जा सकते हैं फलस्वरूप मुखौटे भी हजारों तरह के हो सकते हैं। बचपन में मुंह और आंख पर हाथों की उंगलियां रखकर शेर की मुद्रा बनाकर डराने का उपक्रम मनुष्य की मुखौटा लगाने की पहली प्रत्यक्ष कोशिश रही होगी। इसके बाद आरंभिक मानव ने प्रकृति से कुछ साधन चुनकर मुखौटा बनाया होगा। मुखौटे के लिए पहला साधन पत्ता रहा होगा फिर लकड़ी के मुखौटे बने होंगे। मनुष्य प्रगति के साथ कपड़े लुगदी आदि के मुखौटों का निर्माता बनता चला गया।

कहा जा सकता है कि मुखौटों की दुनियां बड़ी विचित्र और अजीब है। मुखौटे के कारण मिश्र की ममी प्रसिद्ध है। यूरोप में शव को मुखौटा लगाकर दफनाने का रिवाज रहा। यहां स्लाव जाति के लोग उत्सवों के दौरान बारहसींगे का मुखौटा लगाते। मैक्सिको में पत्थर पर उत्कीर्ण मुखौटे मिले। अमेरिका के अमेजन प्रदेश में वृक्ष की छाल और सील मछली की खाल के बने मत्स्याकार मुखौटे प्रचलित हैं।

राजस्थानी लोकजीवन में.....

(पृष्ठ आठ का शेष)

ऊजल धोया ने फटक निचोया।
कठे थांका घर है, ओ जगत दिवाल्या।। (डुबोया)

थोथी बात करने वालों, हाँ-हाँ मिलाने वालों तथा समय का लाभ नहीं लेने बालों के लिए यहाँ कहावतें हैं -

- थारा बोल्या अर पाणी रा ओल्या।
- तेत वाणी, सादां का पातरा में अन्न न पाणी।
- तेली ने माटी कीदो, फेर पाणी ऊँ पग धोवे कंई?

कभी-कभी आवश्यकता वाले आदमी को, वह दुर्लभ वस्तु प्राप्त हो जाती है तो -

साबला बाबा ने बाटकी लादी।
ज्यो पाणी पी-पी ने पेट फोड्यो।।

पत्रकार व्ही.एस. नन्दा ने जल के प्रति आभार व्यक्त करते लिखा है-

We are grateful to water, most precious and abundent nature's gift in India. If used with care and skill, it can transform India into a land of plenty and exercise for ever the spectre of want and Starvation.

संत चतुरसिंहजी बावजी ने जल की निर्मलता एवं उसको प्रदूषित होने का कारण घर बताते कहा था-

निर्मल नीर बादलों में पण, घर में धूल मली है।

भारतीय संस्कृति में जल को जहाँ देवता के रूप में माना गया है, वहीं राजस्थान पर जहाँ-जहाँ जल (झरना, कुण्ड, तालाब, प्रपात) मिला, वहीं भगवान शंकर की स्थापना के उदाहरण मिलते हैं, जो प्रत्यक्षीकरण कहा जा सकता है। दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी नदी-नालों में रेत को खोदकर, जल निकालकर, देव-आकार बना कर 'जलींगदेव' की पूजा करते हैं।

जल हमारे जीवनकाल की वृद्धि में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखे हुए है। एक ने कहा है -

भोजन आधा पेट कर, दुगुना पानी पीव।
तिगुना श्रम, चौगुनी हँसी, वर्ष सवा सौ जीव।।

संसार मिथ्या है और सम्पूर्ण ज्ञान एक दिखावा मात्र है। इस बात को महात्मा शरणानन्दजी ने कितने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है -

नक्शा री नदियाँ वणी, पाणी रो नी काम।
अणी तरे शूं समझ लो, कोरो वाचक ज्ञान।।

जल ही मोक्ष का कारण रहता है। अतः राजस्थानी कहते हैं -

चरणामृत का गटका।
मिटे चौरासी का भटका।।

राजस्थान के दोहा कवि देवकर्णसिंह ने जल के सम्बन्ध में ये दो पंक्तियाँ कितनी मार्मिक और महत्वमयी कही हैं -

हाथ जोड़ विनती करूं, कानो दो करतार।
मारण मारग मोखला, मेह बिना मत मार।।

लोकचित्रों में रंगी रेखाएँ

- वसंत निरगुणे-

लोकचितेरे भलीभाँति जानते हैं कि उन्हें चाँद-सूरज, बैलगाड़ी, आभूषण, सांतिया, कलश कहाँ बनाना है। इसलिए उनका अपना मौलिक संतुलन है। उन्हें चिन्ता नहीं कि आदमी का चित्र बनाते समय एक हाथ लम्बा हो गया या दूसरा छोटा। लोकचितेरे जीवन को ज्यादा देखते हैं रंगों को कम। वे जीवन में रंग उतने ही भरते हैं जितना आवश्यक है।

'मचियहि बैठी पुरखनि, रानी पूछै बिटिया पतोहू। तो इहै नवा कोहबर।

कहँवाँ लिखौ सासू पुरइनि रे, कहँवाँ लिखो बँसवार। तो इहै नवा कोहबर।'

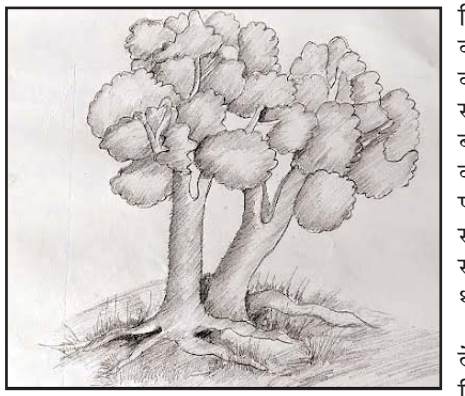

'घर की मालकिन मंच पर बैठी है। पुत्री और बहू पूछ रही है यही नया (केनवास) कोहबर है! हे सासूजी! कहाँ कमल के पत्ते का चित्र बनाऊँ? कहाँ बाँसों की झाड़ी?' सासूजी और भी रेखांकनों का निर्देश देती हैं - आगे लोकगीत में और भी कई उल्लेख हैं-

'दनवाँ चुनत गुवरैया लिखो रे, गैया लिखो रे बछवा लगाय।
तौ इहै नवा कोहबर।
कलसा बिहै चेटिया लौंडी लिखो रे, बाम्हन पोथी लिहे हाथ। तो इहै.....
गैया दुहत अहिरा छौंड़ा लिखो रे, दहिया बेंचत अहिरिनि धेरि। तौ इहै....
आरी-आरी बेली के फूल लिखो रे और लिखो पनिवारि। तो इहै....
भुपसन अमली फरत लिखो रे अमवा धव धवन लाग। तौ इहै.....''

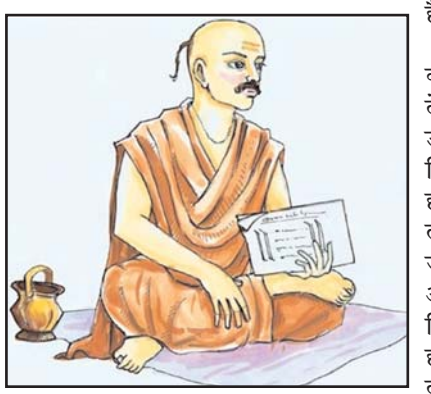

'हे बहू दुरते हुए (केलि करते हुए) तोता, मैना, दाने चुगती हुई गौरेया, बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय, कलश लिये हुए दासी, पुस्तक लिए ब्राह्मण, गाय दुहता हुआ अहीर का लड़का, दही बेचती हुई अहीरनी की कन्या का चित्र बनाओ। आसपास फूली हुई लता का चित्र बनाओ। यही नया कोहबर है।'

यह लोकगीत लोकचित्रकला की समग्र पाठशाला है। इससे यह सिद्ध होता है कि जितने पुराने लोकगीत हैं उससे भी प्राचीन लोकचित्रकला का इतिहास है। गिरिकन्दराओं की मटमैली दीवालों में रंगों का संयोजन कब आरम्भ हुआ यह कहना मुश्किल है। फिर भी द्वापर युग में कृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध को उषा द्वारा वरण करने की जो चित्रकथा प्रचलित है उससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि विभिन्न चेहरों में कृष्ण का चेहरा बनते-बनते उषा एकदम चौंक कर स्वीकार करती है कि हाँ सपने में मैंने इससे बिल्कुल मिलता जुलता चेहरा देखा है लेकिन यह वह नहीं है।

इस पर से चित्रकार सहज अन्दाज लगा लेता है कि निश्चय ही वह कृष्ण का पुत्र अनिरुद्ध ही है। तब अनिरुद्ध का चित्र उकेरा जाता है। राजकुमारी उषा चहक उठती है। बस! यही वह है, जिसको मैंने सपने में वरण किया है। लोकगीत में कथा बड़े सहज ढंग से कही गई है परन्तु चित्रकला के विभिन्न आयामों को यह लोकचित्र-कथा प्रकट करती है। जब तक पूर्ण रंग सयोजन से संतुलित चित्र नहीं बनाया गया होगा तब तक कृष्ण और अनिरुद्ध को पहचानना मुश्किल ही था। उस समय के चितेरों को रंगों का संयोजन अच्छी तरह से आता था। इसमें कोई मतभेद नहीं है।

लोककलाओं को ध्यान से देखें तो पारम्परिक जीवन की दिनचर्याओं को बड़े सहज ढंग से संजोने का उपक्रम होता है।

समग्र भारत में लोककलाओं के दर्शन होते हैं। यामिनीराय के शब्दों में 'कोई भी कलाकार किसी भींत को कोरी नहीं देख सकता।' कच्चे मकानों की दीवारों पर कुछ-न-कुछ मांडणें, थापे-भित्तिचित्र देखे जा सकते हैं। लोककलाओं का आदान-प्रदान आपसी सम्बन्धों, रिश्तों के माध्यम से होता रहा है। सुदूर नये क्षेत्र से लाई गई नव-वधू अपने क्षेत्र के लोकचित्रों को ससुराल की दीवारों पर उकेरती है तब घर के और लोग भी उस कला से परिचित हो जाते हैं।

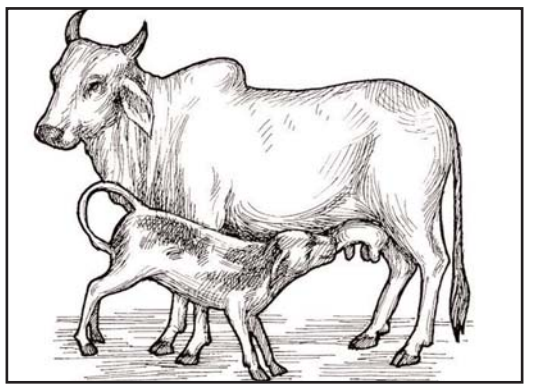

लोककलाओं के रंगों की कोई समस्या नहीं है। सारे रंग देशज देहाती हैं। गाँव में सहज उपलब्ध रंगों का संचय उसी समय किया जाता है जब चित्र उकेरना होता है। रंगों के लिए गाँव के लोक कलाकारों को बाहर नहीं जाना पड़ता। पत्थर पर गोंद, पानी और विभिन्न रंगों की गाँठें घिसकर विभिन्न रंगों का संचयन होता है। हल्दी, कोयला-काजल, नील, दही, खड़िया, पेवड़ी, गेरू, हीरमची आदि से कई तरल रंग बनाये जाते हैं। गोंद जहाँ रंगों को स्थायित्व प्रदान करता है वहीं कुछ चमक भी भर देता है। हरीतिमा के लिए विभिन्न पेड़ों की पत्तियों को पीसकर हरा रंग प्राप्त किया जाता है। निमाड़-मालवा के भित्तिचित्रों के लिए गाँव के लोकचितेरे आज भी इन्हीं रंगों का प्रयोग करते हैं लेकिन अब कहीं-कहीं आधुनिक जल-रंग का समायोजन देखने को मिलने लगा है।

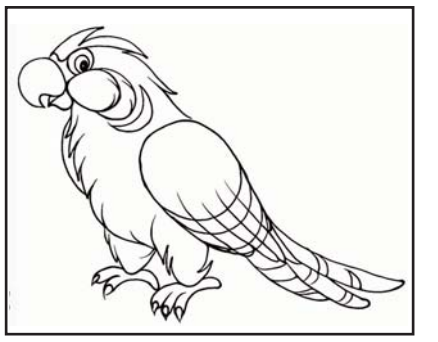

लोककलाओं में रंगों का प्रयोग अमिश्रित रूपों से सीधे किया जाता है। लोककलाओं में मिश्रित रंगों का सर्वथा प्रभाव देखने को मिलता है। बंगाली, मधुबनी, मालवी, निमाड़ी लोकशैलियों में मिलने वाले लोकचित्रों में रेखाओं के साथ सीधे रंगों का प्रयोजन देखा जा सकता है। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि लोककलाओं में (शेड्‌लाइट्‌स) मिश्रित रंगों का प्रयोजन होता था या नहीं अथवा लोककलाकार इस विधा से परिचित थे या नहीं? इसका सीधा उत्तर यही है कि लोकचित्रकार कला के सहजधर्मी पूजक रहे हैं। रंगों के पेचदा उपक्रमों में उन्हें सौन्दर्य को बांधना भाता नहीं था।

उस जमाने में इन्हें सीखने की कोई विधिवत पाठशालाएँ नहीं थीं। परम्परागत जो भी घर की पाठशाला में सीखा जाता वही नयी पीढ़ी ग्रहण करती चलती। लोककलाओं का सदैव जीवित रहने का कारण भी यही है। लोककलाओं में वस्तु (ओबजेक्ट) जीवन से जुड़ी हुई होती है। पशु-पक्षी, घर-आंगन, चूल्हा-चौका, मंगनी-ब्याह, मिलन-विदाई सभी तो लोककलाओं की विषय वस्तु है। विषय-वस्तु भी कहीं बाहर से नहीं ली जाती। सब घर के आसपास से ही लिया जाता है। इसीलिए विषय-वस्तु हर एक के मन को छू जाती है। आसपास की वस्तुओं के मुताबिक ही उनमें रंगों का संतुलन होता है।

रंगों और रेखाओं में भले ही अनुपातिक संयोजन नहीं मिलते लेकिन अभिव्यक्ति तो पूरी-पूरी मिलती है। पेड़ का चित्र बनाने के लिए लोक में जितनी सरल रीति है उतनी कहीं नहीं। बांकी तिरछी खड़ी काली रेखा पर दो चार हरी पत्तियों का रेखांकन; बस। चलते दौड़ते बच्चों के लिए सब रेखाएँ; बस। उस पर सीधे अमिश्रित रंग समूचे चित्रों में ग्रामीण संतुलितता भरने में समर्थ होते हैं। आधुनिक कला के संतुलन को देखने वाली हमारी आँखें जब लोककला के संयोजन को देखती हैं तो बेतरतीब फूहड़पन नजर आता है लेकिन मैं इसे नकारते हुए ग्रामीण संतुलितता की संज्ञा देना चाहूंगा क्योंकि लोकचित्रों का भी अपना संतुलन है। लोकचितेरे भलीभाँति जानते हैं कि उन्हें चाँद-सूरज, बैलगाड़ी, आभूषण, सांतिया, कलश कहाँ बनाना है। इसलिए उनका अपना मौलिक संतुलन है। उन्हें चिन्ता नहीं कि आदमी का चित्र बनाते समय एक हाथ लम्बा हो गया या दूसरा छोटा। लोकचितेरे जीवन को ज्यादा देखते हैं रंगों को कम। वे जीवन में रंग उतने ही भरते हैं जितना आवश्यक है। विभिन्न गुहा चित्रों के रंगों की चटक आज भी जैसी की वैसी है। इसलिए लोक के रंगों का संयोजन वैज्ञानिक रहा है। अस्तु यह खोज का विषय ही है कि लोककलाओं के रंग संयोजन में क्या प्रक्रिया अपनाई जाती रही है? लोककलाओं के बारे में कुछ भी ढूँढ़ना आज के लिए एक सुखद संयोग ही है।

राजस्थानी लोकजीवन में जल-मानस

-दिनेशचन्द्र भारद्वाज-

कुदरत ने हमारी पृथ्वी पर अपने को, त्रिदेवों-जल, थल और वायु के रूप में उजागर किया है जिसे हम पर्यावरण के नाम से पुकारते हैं। प्रकृति ने सबसे महती कृपा इस ग्रह पर यह की कि यहां तीन चौथाई भाग पर जल का विस्तार रखा जो किसी भी अन्य ग्रह पर नहीं मिलता। हमारी धरती पर जब 71 प्रतिशत से अधिक जल विस्तार है तो भी इस पर रहने वाले मानव ने इसे जलग्रह नहीं कह कर भूग्रह ही माना। यह अनोखी बात है कि धरती ने अपनी सतह पर जो पदार्थ हमारे उपभोग हेतु बांटे हैं वे सब मानव की आवश्यकताओं को, इनके महत्व को ध्यान में रखकर, उतनी ही अधिक मात्रा में दिये हैं। कहा है -

हीरे मोती मंहगे किए, सस्ता किया अनाज।
हवा-पानी मुफ्त दिए वाह रे गरीब नवाज।।
देख परायी चौपड़ी क्यों ललचावै जीव ।
रूखी-सूखी खाय के ठंडा पानी पीव।।

हमारे ऋषि-मुनियों ने इस विलक्षण रसायन (जल दो अणु हाइड्रोजन और एक अणु आक्सीजन के यौगिक) को प्रकृति का अलौकिक वरदान मानते हुए, इसे जीवन रस, विभिन्न कार्यकलापों का नियंता और हमारी मनोदशाओं का निर्माता माना और इसे दैविक (देवता के) रूप में समझा।

जल प्रकृति का रंगहीन, गंधहीन और स्वादहीन पदार्थ है, जो जिसमें रहता है, उसी आकार में हो जाता है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है- 'अन्न से प्राणी पैदा होते हैं और अन्न पानी से पैदा होता है। पानी सभी रसायनों में सबसे श्रेष्ठ रसायन है। इसी के कारण संसार में सभी प्रकार के चल, अचल और अन्य प्राणी जीवित हैं।'

यह जीवन-रस, सृष्टि के प्रारम्भ में था और सृष्टि के अंत तक रहेगा। इसे जीवन-रस अथवा जीवन-शक्ति कहना ठीक ही है, क्योंकि -

जल हीरा, जल जौहरी, जल मोतियन की खान।
निगाह उठाकर देखिये, जल बिन जग बीरान।।

आकाश से वर्षा-जल, नदियों-नालों में प्रवाहित होता है। बहता जल सदैव पवित्र होता है और दूसरों की जीवन रक्षा करने वाला कितना परोपकारी होता है -

नदियां न पियें, कभी अपना जल।
पेड़ न खायें, कभी अपना फल।।

राजस्थान में तो जल का अपना विशिष्ट महत्व है। देश के अन्य भागों के समान ही, यह प्राकृतिक सम्पत्ति स्वागत-पदार्थ रखा गया है अत: कहते हैं -

आओ बैठो, पीओ पाणी।
तीन बात तो मोल न आणी।।

इस प्रकार की अनुपम प्राकृतिक सम्पदा, जिसको सभी कालों और सभी स्थानों पर प्रकृति ने तीन रूपों- तरल, ठोस, वाष्प में प्रदान कर, विचित्र गुणवान अनिवार्य पदार्थ बना दिया, जिसके अभाव में जीवन कुछ ही दिनों में समाप्त हो जाता है। यह जल जहां उपयोगी तत्व है, वहीं विभिन्न आपदाओं का कारण भी है। इसीलिए इसे 'श्रेष्ठ मित्र और घातक शत्रु' कहा जाता रहा है। प्रस्तुत है -

कै तो रोके पाणी, ने केकै रोके दाणी

इसकी अकूंत शक्ति के कारण भूमितल पर भूक्षरण मलबे का स्थानान्तरण एवं महान आधुनिक शक्ति जल-विद्युत से हम कितनी प्रगति कर पाए हैं, यह सर्वाविदित है परन्तु जल को नियंत्रण में करने वाला मनुष्य बांध (पाल) बनाकर वैसा कर सका है। बहुउद्देशीय योजना एक और लाभ अनेक, जिनमें सबसे बड़ा लाभ बाढ़ के नियंत्रण का है। एक कहावत से पाल एवं ताल का महत्व स्पष्ट होता है।

पाणी के पाल, अर गाणा पै ताल।

कभी-कभी सतर्क रहने हेतु भी कहा जाता है- 'पाणी पेल्या पाल बांधनी चाव्है।' पानी का महत्व वहीं अधिक रहा है, जहां इसका अभाव होता है। मैदानों में जहां पानी बाढ़ का कारण होता है, वहीं मरुस्थल और अर्थ मरुस्थलों में वह अकाल का कारण हो जाता है। यह अकाल-राक्षस फैल कर पश्चिमी राजस्थान में विनाश लीला करता रहता है। कैसे पसरा है यह जलाभाव का राक्षस? वर्णित है -

पग पूंगल धड़ कोटड़े, उदरं ज बीकानेर।
भूल्यो चूक्यो जोधपुर, ठावो जैसलमेर।।

इस भाग में जल-प्राप्ति उतनी ही कठिन रहती है जितनी आलसी बालकों को विद्या-प्राप्ति कठिन रहती है। कठिन परिश्रम का महत्व लोक में प्रस्तुत है-

घोकन्त विद्या, खोदन्त पाणी।

परन्तु जहां बाढ़ें आती हैं वहां वन वृक्ष बाढ़ जल को कैसे सहन करके विनाश लीलाएं रोकते हैं, उत्पाती को कौन कैसे सहन करता है उसके लिए लोक कवि कहते हैं -

धाम-धूम धरती सहे, बाढ़ सहे बनराय।
कटु वचन साधू सहे औराऊं सह्यो न जाय।।

पानी को कौन फाड़ सकता है! पानी को अलग करना बहुत कठिन ही नहीं असंभव होता है। वैसे परिवार को तोड़ना, छिन्न-भिन्न करना, क्या कभी संभव हुआ है? कहते हैं -

थापांऊ कधी पाणी अलग व्हियो है?

यह विचित्र प्राकृतिक तत्व 'जल' कितना संवेदनशील पदार्थ है! इसे प्रसन्न रखने के लिए जतन की भारी आवश्यकता रहती है। सावधान रहने का आग्रह करते लोककवि ने अपेक्षा की है -

कांच कटोरा, नैण-जल, कै मोती अर मन्न।
अतरा फाट्यां ना संधे, पैली राख जतन्न।।

मानव को अपने जीवनकाल में विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं, परिस्थितियों में रहकर यह संसार पार करना पड़ता है। कहीं सम्मान-सत्कार तो कहीं अपमान-अवमानना आदि जीवन के उतार-चढ़ाव देखने ही पड़ते हैं। पानी का चढ़ना होता है तो उतरना भी, परन्तु दोनों के प्रभाव जमीन-आसमान की दूरियों के द्योतक हैं -

पाणी उतर्‌यो पछे कई है!

जहां 'पानी उतरना' एक अवमानना सूचक कटाक्ष है, वहीं स्थिति को बिगाड़ने वाले पीछे कहां रहते हैं! 'पाण चढ़ा' कर सर्वस्व तक का स्वाहा करा देते हैं। हाथ से अवसर खोना अर्थात उसके कई लाभों से दूर हट जाना, जीवन भर कष्टदायी रहता है, बार-बार अवसर चूक यातनामय अनुभव हों तो कहा जाता है -

वह पाणी मुल्तान गियो।
या व्हो पाणी पैताला यो।

जल तो सर्व शक्तिमान भगवान का सबसे अधिक घुलनशील एवं अनेक पदार्थों को घोल लेने का 'यूनिवर्सल सोलवेण्ट' है! फिर भी पानी में भी कुछ दोष (खोड़) मिल ही जाते हैं। कहीं पानी खारा, मलका, हार्ड आदि दोष वाला होता है। बोरूंदा का पानी तो हड्डियों को विकृत करने वाला होता है। इसे कौन ठीक कर पाएगा? कहा है -

जल में खोड़, करम में कीड़ा।

अर्थात प्राकृतिक दोष तो रहते ही हैं। मिटाने पर भी नहीं मिट पाते। पानी में बड़ी शक्ति है। वाणी अर्थात् पाणी! इसीलिए कहावत बनी -

जस्यो पिये पाणी।
वसी बणे वाणी।।

पग-पग पर पानी का महत्व और पानी की अनिवार्यता रहती है। तभी तो राजस्थान की गृहणियां बच्चों को स्नान कराते, जल का महत्व उजागर करती हैं। कहती हैं -

हर हर गंगे गोदावरी।
चूल्हा पाछे बावड़ी।।

कनक-कनक में अन्तर हम जानते हैं। वैसे ही पानी-पानी में अन्तर कैसा भयंकर प्रभाव रखने वाला होता है ! एक कवि ने इसके कुप्रभाव को बताते हुए लिखा है -

आम फले पतवार सूं, मुवा फले पत खोय।
बांको पाणी जो पीवे, मति कठा सूं होय।।

पत (इज्जत) रखना तो सामाजिक आवश्यकता और विशेषता है। उसे हर मूल्य पर बनाए रखा जाना चाहिये। इसीलिए कहा जाता है -

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे, मोती मानस चून।।

मानव स्वभाव या मानव मन बड़ा विचित्र होता है। कब, कहाँ, क्यों, कैसे बिगड़ जाए! इस प्रकार के स्वभाव वाले आदमियों से सतर्क होकर संयत व्यवहार करना चाहिये। नहीं तो उसके बिगड़ने पर वही दशा होती है, जिसे हम मुहावरे में कहते हैं-

पातली छाछ में पाणी।

छिछलेपन को प्रदर्शित करने पर कहावत है-

अधजल घघरी छलकत जाय।

जब कभी भी काम-काज ठीक न हो पाए और उसमें अपूर्णता या कमी रहे तो बड़ी निराशा होती है। ऐसे अवसरों पर झुंझलाहट के साथ ही अनायास निकल जाता है -

धूल धाणी; राख पाणी।

राजस्थान में पामणे (अतिथि) के कई अर्थ लिये जाते हैं। उन्हें आदर-सत्कार दिया जाना, यहां अनिवार्य होता है परन्तु यदि वह जल से भीगा है तो कैसा व्यवहार पा जाता है-

भींज्यो पामणों, भंगी बराबर।

पानी तो सर्वत्र पवित्र है। वही पानी ब्राह्मण के घर है, तो वही पानी अछूत के घर में भी। अत: 'आम के आम गुठली के दाम' अथवा 'आम खाने से काम है, गुठली गिनने से क्या वास्ता', इसी बात को पानी के सन्दर्भ में कहा है -

पानी पीकर घर पूछना।

जल अपार शक्ति का पदार्थ है जिसे वैज्ञानिक जल-विद्युत, ज्वार-शक्ति आदि में अब मानव-भविष्य को देखने लगे हैं। वैदिक साहित्य में इसे हजारों वर्ष पहले ही ज्ञात कर लिया गया है। उसे अन्धी शक्ति की उपमा देते बताया है -

अन्ध बल जलस्य आयु: प्रेरणात्मकम् विलक्षणे।

इसी बात को कविवर बिहारी ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकारते हुए कहा है कि प्रकृति के बीच में कभी नहीं पड़ना चाहिए, नहीं तो परिस्थिति का संतुलन अवश्य बिगड़ेगा -

कोटि जतन कोऊ करे, परे न प्रकृति हि बीच।
नल बल जल ऊंचौ चढ़े, तऊ नीच को नीच।।

राजस्थान में हाड़ौती प्रदेश में एक नदी 'घोड़ा पछाड़' है। नाम से स्पष्ट है कि इस नदी के बहाव में शक्ति का प्रतीक घोड़ा भी पछाड़ खा जाता है। इसी शक्ति के प्रभाव को बताने वाली लोकोक्ति है -

आई नदी दह को पाणी ले जावे।

अपरिमित शक्ति का कारण पानी भी अपनी ही उल्टी गंगा बहाने वाली शक्ति है। राजस्थान में माना जाता है -

राजा, जोगी, अगन, जल याँ की उल्टी रीत।
दूरा रीज्यो परशराम, ये थोड़ी पाले प्रीत।।

जहां उल्टी रीत जल में है, वहीं इस जल में जमीन के साथ प्रीत भी है -

राजा माने ज्यो राणी।
अर धरती माने ज्यो पाणी।।

कहते हैं 'गुरु बिन ज्ञान और गंगा बिन तीरथ' अधूरे ही होते हैं। अत: गोरखनाथ जैसे महान ज्ञानी पानी पर मौन कैसे रख पाते? उनके भक्त कहते हैं -

सहज मिल्या सो दूध बराबर,
मांग लिया सो पाणी।
खैंच लिया सो रगत बराबर,
गोरख कह गया वाणी।।

चाहे जो भी कहो-मानो, जो लिखा है वह मिलता ही है। पानी तो सबके लिए हैं, अत: -

रोटी-पाणी में सबको सीर।

सबमें सीर वाला पानी, हमारे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधता रहा है। अत: यह पूजनीय पदार्थ है परन्तु हमारे देशवासी इसके महत्व को नहीं समझकर सदैव इसका दुरुपयोग करते रहे हैं। अत: जनवृद्धि के विस्फोट के कारण इस पर भी खतरे का लाल निशान लगाया जाने लगा है! कहीं-कहीं पानी की टंकी पर देखने को मिलने लगा है -

अब पानी सीमित है।
परिवार सीमित रखिये।।

गुरु बनाने एवं सगा करने में सबसे अधिक सावधानी रखनी जरूरी होती है क्योंकि एक भवसागर को तारता है, तो दूसरा संसार-सागर से उबारता है। पानी भी लोकजीवन में वैसा ही महत्वपूर्ण है। जल की ओर इंगित करते कहा गया है -

गुरु कीजे जाण, पाणी पीजे छाण।
पाणी पीजे छाण, सगो कीजे जाण।।

राजस्थान में रहने वाले लोगों ने जल के महत्व को सबसे अधिक समझा है। अत: यहां पग-पग पर 'गंगू भव' (गंगोद्‌भव) गंगा का अवतरण रखा गया है। गंगाजल के प्रति कितना सम्मान, कितना विचित्र भाव, कितना लगाव, व्यक्ति-व्यक्ति में भरा है। गंगा माँ को राजस्थानवासी सदियों से मानता है और इसे प्रसन्नता का कारण मानता है -

मन चंगा तो कठौती में गंगा।

इसी प्रकार परिवार वृद्धि को गंगामाई के साथ जोड़ने वाले राजस्थानी वृद्ध को कैसा पुण्य वाला माना है -

पोता अर गंगाजी में गोता।

कभी-कभी गंगा को साधन बनाकर, स्वाभाविक घटनाओं या मुक्ति को भी उससे जोड़ा गया है। कभी-कभी लोग कह देते हैं -

रपट पड्‌या की हरगंगा : और न्हाया जोई गंगा।

जहां राजस्थान के हिन्दू सबसे अधिक श्रद्धा 'गंगाजल' के प्रति रखते हैं, वहीं यहां के मुसलमान भी 'आबे-झमझम' की महत्ता एवं सम्मान कितना आगे बढ़कर करते हैं ! यह गौरव की बात है।

लोकजीवन ने कईबार अनायास बनते संयोगों की महत्ता को 'नदी नाव संयोग' की अभिव्यक्ति दी है। पानी को संग्रह वृत्ति से भी जोड़ा गया है तभी तो हम कहते हैं-

बूंद-बूंद सूं घड़ो भर जावे है।

राजस्थान में पाणी को राणी के साथ विविध प्रकार से जोड़ा गया है -

रीझी ए राणी, लालरा के पाणी तथा
थूंई राणी, मूंई राणी।
कुंण भरे परंडे पाणी॥

राजस्थान में विधवा विवाह (नाता) एक साधारण सी बात है जैसे गंगा में गोता-

रांड रो नातो अर पाणी रो गोतो।

प्यास एवं प्यासा पानी के लिए कितना विह्वल रहता है तो कहा है कि राजस्थान में रेत को भी प्यास लगती है और प्यासा क्या कुछ नहीं पी लेता है -

इश्क न देखे जात-कुजात।
नींद न देखे टूटी खाट।
तरस्यो न देखे धोबी घाट।

आवारा एवं सदैव दूसरों पर निर्भर रहने वाले के प्रति राजस्थान में कहा है -

- शेष पृष्ठ सात पर

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक डॉ. तुक्तक भानावत द्वारा 904, आर्ची आर्केड, राम-लक्ष्मण वाटिका के पास, न्यू भूपालपुरा उदयपुर - 313001 (राज.) से प्रकाशित एवं
मुद्रक लोकेश कुमार आचार्य द्वारा मैसर्स पुकार प्रिंटिंग प्रेस 311-ए, चित्रकूट नगर, भुवाणा, उदयपुर (राज.) से मुद्रित। सम्पादक : रंजना भानावत।
फोन : 0294-2429291, मोबाइल-9414165391, Email : shabdranjanudr@gmail.com, drtuktakbhanawat@gmail.com, सर्व विवादों का न्याय क्षेत्र उदयपुर होगा।